

श्रीराम चरितम्

सरल काव्यम्



रचयिता

पं० रामविशाल त्रिपाठी शास्त्री

अवकाश प्राप्त संस्कृत शिक्षक

ग्राम—बड़ी पोड़ी (तहसील सिहोरा)

जिला—जबलपुर (म० प्र०)



प्रकाशक

पं० वृज विलास शुक्ल

एम०ए० एल०एल०बी०

जबलपुर (म० प्र०)



श्री मङ्गल मूर्तये नमः
संक्षिप्तेन चरित्रेण संस्कृतेन निबद्धम्

श्रीराम चरितम्

सरल काव्यम्

रचयिता

रामविशाल त्रिपाठी शास्त्री, अवकाश प्राप्त संस्कृत शिक्षक
ग्राम—बड़ी पोड़ी (तहसील मिहोरा)
जिला—जबलपुर म० प्र०

[लेखक द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित]

संशोधक

पं० नरोत्तम त्रिपाठी, व्याकरणाचार्य, एम० ए०
अध्यापक नारायण संस्कृत महाविद्यालय
कटनी—मध्य प्रदेश

प्रकाशक

पं० वृज विलास शुक्ल

एम० ए० एल० एल० बी०
जबलपुर म० प्र०

स्करण सन् १९७०]

[मूल्य : रु० २.५० पै०]

लेखक के दो शब्द

संस्कृत प्रेमियों के प्रति

सुसंस्कृते र्महत्तत्त्वं संस्कृते निहतं ननु ।

तस्मात् सर्वं प्रयत्नेन तद्ग्राह्यं भारते जनैः ॥

अखिल विश्व में भारत की प्राचीनता, महनीयता, दार्शनिकता सर्ववन्द्यता, सर्वज्ञता सर्वश्रेष्ठता एवं प्रामाणिकता को सुरक्षित रखने का एक मात्र श्रेय देव-वाणी संस्कृत भाषा को ही है ।

वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, अश्वघोष आदि पूर्ववर्ती कवियों ने जिस सरल संस्कृत भाषा के माध्यम से भारतीय राजनीति एवं लोक व्यवहार के उत्कृष्ट स्वरूप को भारत में ही नहीं अपितु विश्व के कोने-कोने में प्रसारित किया था । भारवि, माघ, भवभूति, विशाखदत्त, भट्ट नारायण सुबन्धु एवं हर्ष आदि परवर्ती कवियों ने उसी भाषा में अपने काव्य तथा नाटकों की रचना की है ।

महर्षि वाल्मीकि ने राम के उदात्त चरित्र को आदर्श महापुरुष के रूप में चित्रित किया । व्यास कालिदास आदि उस विषय में उतने सफल नहीं हो सके । गोस्वामी तुलसीदास को राम के चरित्र चित्रण में सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई । किन्तु गोस्वामी जी ने बोल चाल की हिन्दी अवधी भाषा में रामायण की रचना की । भारतीय संस्कृति तथा लोक जीवन की सुरक्षा भक्ति और अध्यात्म का गूढ़ विवेचन उक्त रचना का लक्ष्य था । भक्ति रस के रसिक अध्यात्म तत्व के जिज्ञासु भाषा के परिणत छंद रस तथा अलङ्कार के वेत्ता महर्षि वाल्मीकि के रामायण एवं गोस्वामी तुलसीदास के राम चरित मानस के अपूर्व, अलौकिक, अप्रमेय अकथनीय, अनिर्वचनीय, अकल्पनीय रसास्वादन से तृप्त हों । उनके उच्च मस्तिष्क के अनुकूल नहीं अपितु वर्तमान युग के अनुसार विदेशियों के शासन काल में मृत प्राय संस्कृत भाषा के उत्थान में सहयोग देने के लिये आधुनिक नेता एवं शिक्षा-विद्जनों के आदेश से सम्मत सरल संस्कृत भाषा में पूर्वोक्त महर्षि वाल्मीकि तथा गोस्वामी तुलसीदास के कथानक के आधार पर और

भी कहीं कहीं अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर केवल कथानक रूप में अपनी आत्मा की वृत्ति के लिये, साथ ही देववाणी के प्रेमी सरल संस्कृत भाषा से परिचित जनों के लिये यह 'श्री रामचरितम्' ग्रन्थ मेरे हाथों से प्रसूत हुआ है ।

यद्यपि मैं कवि नहीं हूँ, आज तक मैंने कोई कविता नहीं की किन्तु अचानक ही ईश्वर की प्रेरणा हुई । अतः लगभग दो हजार श्लोकों से युक्त सा. १ काण्ड वाले "श्रीराम चरितम्, ग्रन्थ को पूर्ण करने में समर्थ हो सका हूँ । यदि पाठक इस ग्रन्थ से कुछ लाभ ले सकें, तो मैं अपने को सफल मानूँगा ।

आज के युग में मानव की कार्य तत्परता समयाभाव का मूल कारण है । रामायण का पारायण करने के इच्छुक वाल्मीकि या तुलसीदास द्वारा रचित रामायण का पाठ अल्प समय में नहीं कर पाते अतः ऐसे रामचरित प्रेमियों की सुविधा के लिये तीन घण्टे में ही पूर्ण हो सकने योग्य इस ग्रन्थ का निर्माण अधिक उपयोगी सिद्ध होगा । ऐसी मुझे आशा है । सभी विज्ञ पाठक बन्धुओं से विनय पूर्वक निवेदन है, कि इसमें जो त्रुटियाँ प्राप्त हों, उन्हें मुझे सूचित करने का कष्ट करें, ताकि मैं उनका समुचित समाधान कर सकूँ । इस पवित्र ग्रन्थ निर्माण में प्रेरणा एवं सहयोग देने वाले सभी सज्जनों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ । इस ग्रन्थ के संशोधन में श्री पं० नरोत्तम प्रसाद त्रिपाठी व्याकरणाचार्य एम० ए० अध्यापक नारायण संस्कृत महाविद्यालय कटनी ने जो विशिष्ट योगदान किया है, उसके लिये मैं आजीवन आभारी हूँ साथ ही साथ उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ ।

श्रीमान बाबू भाई पटेल, व्यवस्थापक श्री मोहनलाल हरगोविन्द, प्रतिष्ठान, बीड़ी, फर्म, सिहोरा ने इस पुस्तक के प्रकाशन में आर्थिक सहयोग दिया है अतः उनका भी मैं आजीवन आभारी हूँ, और उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ ।

अन्त में, इस पुस्तक की पाण्डुलिपि से प्रेस कापी तैयार करने का कार्य सम्पादन करने वाले श्री भइया लाल अधिपाठक का भी मैं आभारी हूँ ।

ग्राम बड़ी पोड़ी (पोड़ी कलाँ)

विद्वज्जन चरण चञ्चरीकः

पो० डीमर खेड़ा जिला जवलपुर म० प०

पं० रामविशाल त्रिपाठी 'शास्त्री'

विषय-सूची

बालकाण्डम्

विषय क्रम सूची	...	श्लोक संख्या
स्तुति, ग्रन्थ माहात्म्य शिव पार्वती सम्वाद	...	१-२८
रघुवंश वर्णन, यज्ञ वर्णन, रामजन्म वर्णन	...	२९-४४
रामादि पुत्रों की शिक्षा वर्णन	...	४४-४७
मुनि विश्वामित्र आगमन, दशरथ का राम लक्ष्मण को दे देना	...	४८-५६
ताड़का राक्षसी का आना, माया जाना सुबाहु आदि का वध	...	५७-६०
अहिल्या का राम के द्वारा उद्धार अहिल्या द्वारा राम स्तुति	...	६१-६८
जनक के निमंत्रण में विश्वामित्र राम सहित जनकपुर प्रवेश	...	६९-७६
राम द्वारा शिष्य के लक्षण पूछने पर, विश्वामित्र का वर्णन करना	...	७७-८०
पुष्पवाटिका से पुष्प लाने के हेतु राम लक्ष्मण को भोजना	...	८१-८३
वहाँ पर सीता का दर्शन एवं पुष्प लाकर देना	...	८४-१२३
धनुर्यज्ञ समाप्त हो वर्णन	...	१२४-१२९
यज्ञ सभास्थल में सूत द्वारा जनक के प्रण की घोषणा	...	१३०-१३५
जनक विषाद, लक्ष्मण क्रोध, राम विश्वामित्र की आज्ञा पर	...	१३६-१३८
धनुष भङ्ग तथा परशुराम लक्ष्मण संवाद	...	१३९-१४५
सीताराम विवाह वर्णन वरात का अयोध्या में प्रवेश—नान्दी	...	१४६-२२४
आद्यादि कुलाचार पूजनादि तथा स्तुति	...	

अयोध्याकाण्डम्

स्तुति; सीताराम का अयोध्या प्रवेश माहात्म्य	...	१-६
राम के राज्याभिषेक की तैयारी, इन्द्र का सरस्वती को भोजना	...	७-२६
मन्थरा का कैकेयी को समझाकर राज्याभिषेक रुकवाना	...	२७-५५
मन्थरा के समझाने पर कैकेयी का कोप भवन में जाना और	...	५५-७६
दशरथ से वर मांगना	...	७७-८२
राजा दशरथ का विलाप; सुमन्त्र राजा संवाद	...	८३-८६
राम को बुलवाना राम का वनवास की तैयारी करना	...	८७-१००
रामका लक्ष्मण सीता सहित माताओं व पिता से मिल वनजाना	...	१००-१४८

वनवासी वेष में गुरुजी के यहाँ जा, उनसे आज्ञा लेकर वन जाना	१४६-१५३
रथ में सुमन्त्र सहित राम का वनगमन ग्रामीण जनता का विषाद करना तथा सहचरों का साथ जाना	१५४-१६१
प्रथम निवास तमसा तीर, साथियों को छोड़ना तथा विषाद	१६२-१६७
नगर के लोगों का विषाद, गुहाराज भेंट और उनका स्वागत	१६८-१८४
गङ्गा स्नान, प्रार्थना तथा जटा बंधन करना सुमन्त्र को लौटाना	१८५-२०१
राम केवट संवाद तथा गङ्गा पार करना, गुह का लौटना	२०२-२२२
तीर्थराज स्तुति भरद्वाजाश्रम गमन, संवाद यमुना स्तुति	२२३-२४२
राम का वाल्मीकि आश्रम गमन तथा संवाद वर्णन	२४२-२६७
राम का चित्रकूट में निवास करना तथा शोभा वर्णन	२६८-२७५
सुमन्त्र की अयोध्या वापसी, तथा श्रवण कथा वर्णन, दशरथ मरण भरत आगमन प्रतिमा गृह में प्रवेश, माता के यहाँ जाना कैकेयी भरत संवाद	२७६-३२५
भरत कौशल्या संवाद तथा सुमित्रा संवाद	३२६-३३४
भरत वशिष्ठ संवाद राजा का अन्त्योष्टि संस्कार	३३५-३५६
भरत का राम को लौटाने जाना, भरद्वाज वशिष्ठ संवाद	३५७-३८३
लक्ष्मण क्रोध भरत का चित्रकूट प्रवेश तथा मिलन संवाद	३८४-४००
वशिष्ठ का दशरथ मरण बताना लौटने हेतु प्रस्ताव संवाद	४०१-४२३
सविषाद भरत का लौटना, चरण पादुका सिंहासन पर रखना भरत का नन्दी ग्राम में निवास स्तुति	४२४-४३३

अरण्यकाण्डम्

राम स्तुति, सीता को सजाना, जयन्त की कथा	१-१७
अत्रि-मुनि राम संवाद तथा सीता अनसुइया संवाद	१७-३५
राम विराध को मुक्ति देकर शरभंग आश्रम गये, राम मुनि संवाद	३६-४७
सुतीक्ष्ण मिलन, राम सुतीक्ष्ण तथा अगस्त्य संवाद	४८-६७
अगस्त्य के कथनानुसार राम का पञ्चवटी गमन तथा उपदेश	६८-९०
लक्ष्मण द्वारा सूर्यशक्ता का नाक-कान काटना तथा खरादि वध	९१-११२

सूर्यणखा का रावण के पास जाना मारीच वध, राम को लक्ष्मण की परीक्षा करना	...	११३-१३४
सीता लक्ष्मण संवाद सीता हरण तथा राम विलाप जटायु मुक्ति		१३५-१५८
श्री राम शबरी संवाद पम्पा सरोवर को जाना	...	१५८-१८०
राम का मुनियों के प्रति उपदेश तथा राम नारद मिलन, स्तुति		१८१-१९८

किष्किंथाकाण्डम्

स्तुति : राम लक्ष्मण का ऋष्यमूक वन में निवास हनुमान मिलन सुग्रीव मित्रता		१-२८
आभूषण देना, सुग्रीव का बाली के विरोध का कारण बताना		२९-६१
तारा बाली संवाद, सुग्रीव बाली युद्ध वर्णन बाली मरण		६२-८८
तारा विलाप, राम का उपदेश देना बाली का अन्त्योष्टि संस्कार		८९-९८
सुग्रीव राज्याभिषेक वर्षा और शरद ऋतु वर्णन	...	९९-११९
सीता की खोज हेतु लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजना	...	१२०-१२७
सुग्रीव का सीता की खोज में बानरों को भेजना	...	१२८-१३७
बानरों की सम्पाति से भेंट तथा सीता का पता बताना		१३८-१५०
बानरों का समुद्र तट पर जाकर मंत्रणा करना	...	१५१-१५४
बानरों के असमर्थ होने पर जाम्बवान का हनुमान को उत्साहित करना हनुमान का तैयार होना	...	१५५-१७१

सुन्दरकाण्डम्

स्तवन हनुमान की लङ्का प्रस्थान की तैयारी	...	१-१०
हनुमान मैनाक भेंट हनुमान सुरसा संवाद	...	११-२३
हनुमान का समुद्र उत्पतन और लङ्का प्रवेश	...	२४-२८
लङ्का राक्षसी से हनुमान की भेंट	...	२९-३५
लङ्का पुरी की शोभा वर्णन	...	३६-६१
रावण आदि निशाचरों के महलों में हनुमान का घूमना	...	४२-६०
अशोक वाटिका को जाना सीता को देखना	...	६१-६६
सीता को समझाने हेतु रावण का आना अनेक लोभ देना	...	६७-७८

त्रिजटा स्वप्न वर्णन हनुमान सीता भेंट और संवाद ...	७८-१०६
अशोकवाटिका उजाड़ना अक्षयवध मेघनाद द्वारा हनुमान का बंधन	११०-१२५
हनुमान रावण संवाद विभीषण का हनुमान के वध से रोकना	१२६-१४६
लङ्का दहन सीता की अग्नि की स्तुति करना ...	१४७-१६१
सीता से आज्ञा लेकर समुद्र पार करना ...	१६२-१६६
वानरों से भेंट मधुवन के फल खाना तथा राम के पास जाना...	१७०-१७८
सीता की खबर देना राम हनुमान संवाद ...	१७९-१८७
सब वानरों से मंत्रणा कर राम का समुद्र के पास जाना ...	१८८-१९२
मन्दोदरी रावण संवाद ...	१९३-२०५
विभीषण रावण संवाद तथा विभीषण का राज्य निष्कासन	२०६-२२०
विभीषण का राम के शरण जाना ...	२२१-२३०
राम का समुद्र से प्रार्थना करना भयभीत समुद्र का आना	
समुद्र बन्धन उपाय बताना तथा स्तुति ...	२३१-२४६

लङ्काकाण्डम्

स्तवन सेतुबन्ध रामेश्वर स्थापना प्रार्थना माहात्म्य वर्णन...	१-२८
वानरों द्वारा उत्पात सुन रावण का घबराना समुद्र के नाम कहना	२९-३४
रावण मन्दोदरी संवाद, प्रहस्त रावण सम्वाद ...	३५-५५
रावण की राम के प्रति कल्पना तथा संवाद ...	५६-६४
अत्र किरीट कुरङ्गल भंग वर्णन ...	६५-६७
राम का रावण के पास अङ्गद को भेजना तथा संवाद ...	६८-१०६
रावण मन्दोदरी संवाद ...	१०७-१०९
लक्ष्मण सहित वानरों का राक्षसों से युद्ध मेघनाद का शक्ति प्रहार	११०-१२४
हनुमान का मुखेण वैद्य का लाना तथा संजीवनी बूटी लाना	१२५-१३८
राम विनाश लक्ष्मण का जीवित होना ...	१३९-१४६
राम कुम्भकर्ण मेघनाद का युद्ध वर्णन एवं मरण ...	१४७-१८६
राम रावण युद्ध, रावण मरण अन्त्योष्टि संस्कार राम उपदेश	१८०-२२७
विभीषण का राज तिलक ...	२२८-२३०

हनुमान का सीता की खबर लाना	...	२३०-२३६
राम की आज्ञा पर विभीषणादि को सीता को लाना, ब्रह्मा नारदादि की स्तुति तथा सीता की अग्नि परीक्षा	...	२३७-२५१
पुष्पक यान में सभी बनारों सहित अयोध्या प्रस्थान तथा स्तुति	...	२५२-२६७

उत्तरकाण्डम्

स्तुति; राम का अयोध्या के निकट पहुँचना, हनुमान को भरत के पास भेजना तथा वृत्त लेकर हनुमान का लौटना	...	१-२२
राम की आगवानी हेतु भरत का आना तथा सब की भेंट	...	२३-५२
गुरु जी की आज्ञा पर राम राज्याभिषेक होना	...	५३-६७
राम के दर्शनार्थ आये शिव ब्रह्मा देवता वेदों ऋषियों की स्तुति विभीषण सुग्रीवादि की विदाई करना	...	६८-८४
राम-राज्य व्यवस्था वर्णन	...	८५-१००
सनम्र भरत के प्रश्न पर श्रीराम के उत्तर	...	१०१-१२४
प्रजा वर्ग को बुला कर राम का सद्बुपदेश देना	...	१२५-१५२
राम वशिष्ठ संवाद	...	१५३-१६५
राम के द्वारा हनुमान की प्रशंसा	...	१६६-१७३
शङ्कर पार्वती संवाद, शंकरका कागभुशुण्डि गरुड़की कथा कहना	...	१७४-१८०
गरुड़ का भुशुण्डि के पास जाकर रामकथा पूँछना	...	१८१-२००
गरुड़ के प्रश्न पर कागभुशुण्डि का राम कथा कहना	...	२०१-२०३
भुशुण्डि का गरुड़ को उपदेश देना	...	२४०-२३५
कलियुग वर्णन	...	२३६-२६२
भुशुण्डि का गरुड़ को परम भक्ति उपदेश	...	२६३-२८३
प्रसंग वश कागभुशुण्डि का शानि महादशा तथा माहात्म्य वर्णन	...	२८४-३१६
पार्वती भ्रम नाश	...	३१७-३३७
श्री राम चरितम् माहात्म्य वर्णन	...	३३८-३४३
श्री राम चरित बनाने का काल स्थान निर्देश	...	३४४-३५१
ग्रन्थ कर्त्ता परिचय	...	३५२-३५६
राम चरित माहात्म्य वर्णन तथा पात्र स्तवन	...	३५७-३५९
	...	३६०-३६७

श्रीगणेशायनमः

बालकाण्डम् प्रारभ्यते

गणेशं देवेशं सकल सुर पूज्यं सुख करम् ।

सदा ध्येयं मान्यं प्रथित-जन-पूज्यं सुरवरम् ॥

शिवा पुत्रं शैवं विधि हरि तुतं भक्त वरदम् ।

नमामीशं देवं गणपति विभुं सर्व सुखदम् ॥१॥

चिदानन्दं रामं जन सुख करं कल्मष हरम् ।

सदा शातं दान्तं सकल सुभदं ज्ञान वरदम् ॥

दयावन्तं श्रेष्ठं कर शर धृतं विश्व सुखदम् ।

भजे सीता नाथं सुकवि वरदं लक्ष्मण युतम् ॥२॥

श्री गणेशं नमस्कृत्य बागांशाञ्च सरस्वतीम् ।

लिखामि राम चरितं भक्ति मुक्त फल प्रदम् ॥३॥

सिद्धिदा बुद्धिदा जाड्य हन्त्री ब्रह्म स्वरूपिणी ।

काञ्चक्षपी धारिणी देवी नित्यं विजयते तराम् ॥४॥

वन्दे विष्णुं सुयोगेशं सच्चिदानन्द रूपिणम् ।

मन्द हास्य मुखाब्जवै सुन्दरं मुख मण्डलम् ॥५॥

श्री रामं परमात्मनं परम्ब्रह्म जितेन्द्रियम् ।

निर्गुणं सच्चिदानन्दं वन्दे विष्णुं जगद्गुरुम् ॥६॥

वायु पुत्रं महावीरं पिङ्गनेत्रं गुणाकरम् ।

ध्यायन्तं हृदि रामं स्वं, रामदूतं नमाम्यहम् ॥७॥

वाल्मीकिश्च प्रभु व्यास, स्तुलसीदास कोविदः ।

काव्यं प्रणीतवन्तस्ते, वन्द्या लोक सुखावहाः ॥८॥

गैवी नाथं यतिं वन्दे, ज्ञानिनं मौन शीलिनम् ।
 परं तत्त्व सुवेत्तारं, भजामि भक्त वत्सलम् ॥६
 पितरं गोकुलं वन्दे देवयानीं सुमातरम् ।
 पितरो भास्वरौ पूज्यौ, सत्यव्रत परायणौ ॥१०
 गुरुं मधुवनं वन्दे, शास्त्रिणं शास्त्र पारगम् ।
 देव वाण्यां सुनिष्णातं, सत्य मूर्तिं तपो निधिम् ॥११
 उपासकस्य शक्तेश्च, वासुदेवस्य सर्वदा ।
 गुरोर्मम सुधारस्य, ध्यायामि पद पङ्कजौ ॥१२
 शरण्यं विमलं दिव्यं, श्रीराम चरितं मुदा ।
 दद्युर्दोषं न विद्वांस, स्वभक्त्या लिख्यते मया ॥१३
 संक्षिप्तेन चरित्रेण, सुरम्य सुर भाषया ।
 कथ्यते तत्तु यद् बुद्ध्या, भक्ति पुष्टं कथानकम् ॥१४
 इदं राम विशालेन; लिख्यते चरितं मुदा ।
 सुन्दरं परमानन्दं, कैवल्यं सुखदं शुभम् ॥१५
 लोक ज्ञानाय चारित्र्यं, रामस्य परमात्मनः ।
 भक्तिदं सुखदञ्चैव, शिष्यं प्रति निगद्यते ॥१६
 अगाध सागरं चरितं, प्रभो रामस्य विद्यते ।
 तितोर्षुः दुस्तरं मोहात्, स्वल्प बुद्धि रयंजनः ॥१७
 व्रते तथापि तद्वृत्तं, परं श्रेष्ठं हि पावनम् ।
 प्रेरणया प्रभो विद्वन्, रामस्य परमात्मनः ॥१८
 संस्कृतस्य प्रचाराय, स्वभक्त्या वर्ण्यते मया ।
 अज्ञानां सुख बोधाय, तथा स्वान्तः सुखाय च ॥१९
 कथादौ स्वस्ति कांक्षाये, श्रीवाल्मीकि महर्षिणः ।
 आदिकाव्यात् समुद्धृत्य, पूज्यं पद्यम् विलिख्यते ॥२०
 मानिषाद् प्रतिष्ठां त्व मगमः शास्वतीः समाः ।
 अत्क्रौञ्च मिथुना देक मवधीः काम मोहितम् ॥२१॥
 ॐ रामाय नमो रामं, सीतां विश्व विमोहिनीम् ।
 जगतः पितरौ वन्दे, सीता रामौ शिवा शिवौ ॥२२

कैलासे परमे रम्ये रत्नपीठे सुशोभने ।
 सविष्टं ध्यानं निष्ठं च, शूलपाणिं शिवं प्रभुम् ॥२३॥
 देवीवामाङ्ग संस्थासा, पार्वती गिरिजा सती ।
 भक्ति नन्ना परम्प्रेम्णा, निर्जगाद पतितदा ॥२४॥
 दाशरथेश्च, रामस्य, रामस्य परमात्मनः ।
 तयार्भेदश्च किं वैस्या, दिति शङ्कावलीयसी ॥२५॥
 तद् रहस्यं समाचक्ष्व, रामस्य चरितं मुदा ।
 हे स्वामिन् करुणा सिन्धो, मम शंकां निवारय ॥२६॥
 पार्वत्या वचनं श्रुत्वा, शङ्करोलोक शंकरः ।
 रामस्य चरितं पुण्यं, सर्वं लोक सुखावहम् ॥२७॥
 दिव्यं मनोरमं धन्यं, ध्यायन् हृदि पुनः पुनः ।
 तच्छङ्कायाः निरासाय, जगाद पार्वतीं प्रति ॥२८॥
 प्रख्याते भारते देशे, सूर्यवंशः समुन्नतः ।
 आसीद्दानी च तेजस्वो मनस्वीलोकवन्दितः ॥२९॥
 तस्मिन् वंश्ये समुत्पन्नः, रघुदेवः पराक्रमी ।
 धर्मिष्ठश्चाग्रणी दानी, चकाशे भास्करो यथा ॥३०॥
 तदारभ्य तु तद्वंशो, रघुवंशो निगद्यते ।
 त्रेतायां प्रथमे कल्पे, तस्मिन्नेव महाकुले ॥३१॥
 अयोध्याधिपतिः श्रीमान्, नृपो दशरथः सुधोः ।
 सुधीरः सत्य सन्धश्च, सत्यवादी हृदव्रतः ॥३२॥
 चक्रवर्ती महाप्राज्ञः, प्रादुरासी नृपोत्तमः ।
 सुशीला ललना स्तस्य सदाचार रता ननु ॥३३॥
 कैकेयी च सुमित्रा च, कौशल्यासन् वराङ्गनाः ।
 स्वर्णं सिंहासनसीनः पुरा दशरथो नृपः ॥३४॥
 वार्धक्ये चान पत्यत्वात् महाचिन्ता तुरोऽभवत् ।
 वशिष्ठञ्च समाहूय, स्वामि प्रायन्यवेदयत् ॥३५॥
 नृपस्य वचनं श्रुत्वा, मुनिस्तं प्रत्युवाच हि ।
 पुत्रेष्टं कुरु राजेन्द्र, सचेति प्रादिशद्यदा ॥३६॥

आहृत्य सर्वं संभारान्, सुयज्ञं प्रारभतदा ।
 हविषा हूयमानेन, संजातो हव्यः वाणमुदा ॥१७॥
 हव्यं दत्त्वा तदा वह्निः, राजानं समं तोषयत् ।
 नृपो हव्यं समानोय, राज्ञीणां समभाजयत् ॥१८॥
 हव्यं दत्त्वा महाराजो, गुरोः कृपां ममन्यत ।
 कालादनन्तरे राज्यः सुषुविरे प्रियान्सुतान् ॥१९॥
 कौशिल्यायाञ्च रामोवै, सुमित्रायाञ्च लक्ष्मणः ।
 कैकेय्यां भरतो जातः, सुमित्रायाञ्च शत्रुहन् ॥२०॥
 जातान् पुत्रान् हि संहस्य, वाग्मी दशरथो नृपः ।
 भाग्योदयं सुसंवीक्ष्य, परं हर्षं मुपागतः ॥२१॥
 पुरो धायं समाहूय, नान्दी श्राद्धं तदा करोत् ।
 वस्त्रं धनं हि गोदानं, याचकैभ्यः समाददात् ॥२२॥
 महार्हेण वशिष्ठेन, तन्नाम करणं कृतम् ।
 पूज्यो जेष्ठस्य पुत्रस्य, रामचन्द्रं चकार वै ॥२३॥
 द्वितीयं भरतं नाम, तृतीयं लक्ष्मणं तदा ।
 चतुर्थं समनु प्राप्तं, शत्रुघ्नं कृतवान्मुनिः ॥२४॥
 श्रीरामं वैरमा नाथं, दृष्ट्वा राजाति हर्षितः ।
 परम्प्रभुं हितं ज्ञात्वा, तस्मिन् प्राणान् समादधौ ॥२५॥
 पठनार्थं तु पुत्राणां प्रेषयामास शैशवे ।
 महायोगी वष्टिस्य, परं श्रेष्ठं शुभाश्रमं ॥२६॥
 सुकुमाराः समागच्छन् गुरोराश्रमं सान्नधौ ।
 सकृच्छिन्नं मात्रेण, सर्वज्ञास्त्वं भवन्क्षणम् ॥२७॥
 सुतान् संललालयन्प्रेम्णा, सदिवसान् समापयत् ।
 एकदा हि द्विजश्रेष्ठो, विश्वामित्रः समागतः ॥२८॥
 यज्ञस्य रक्षणार्थाय, नृपस्याभिमुखोऽभवत् ।
 आसनं समधिष्ठाय, विश्वामित्रं मुनिं नृपः ॥२९॥
 पूजार्हं वै मुनिश्रेष्ठं, मानिष्यमकरोन्मुदा ।
 विश्वामित्रः सुखासीनः प्रत्युवाच नरोत्तमम् ॥३०॥

देहि राजेन्द्र पुत्रौद्वौ, धन्विनौ राम लक्ष्मणौ ।
 मत्त संरक्षणार्थाय, साधूना मुदयाय च ॥५१
 धरा कल्मष नाशाय, धर्म रक्षण हेतवे ।
 जगतोहि हितार्थाय, राक्षसानां वधाय च ॥५२
 राजन्प्रयच्छ शीघ्रं तु गच्छामि स्वाश्रमं तदा ।
 तादृशं वचनं श्रुत्वा, नृपः खिन्न मुखोऽभवत् ॥५३
 मुनि तु व्याज यन्प्रेम्णा, तस्माद् रुष्टो हि कौशिकः ।
 रुष्टं मुनिञ्च दृष्ट्वासौ, भयभीत स्तदा नृपः ॥५४
 पुरोधसं समाहूय, जगाद भय कारणम् ।
 गुरुं संमन्त्रय राज्ञा वै, प्रदत्तौ राम लक्ष्मणौ ॥५५
 उभौ पुत्रौ गृहीत्वाच, जात हर्षो महामुनिः ।
 सुवलातिवले विद्ये, ताम्याञ्च प्रददे मुनिः ॥५६
 अर्ध मार्गे तु सम्प्राप्ता, ताटका काम चारिणी ।
 तां सदृश्य भयाकारां, मुनिर्जातो भया कुलः ॥५७
 विश्वामित्रेण वावुक्तौ, राम लक्ष्मण वीर कौ ।
 जहि राम हि वोभत्सां, क्रूरां दुष्टां निशाचरीम् ॥५८
 चापं सन्धाय रामोसौ, राक्षसीं व्यहनत्तदा ।
 ताटकां हन्य मानेन, निर्भीतो मुनि सत्तमः ॥ ५९
 क्रूरं धूर्तं सुबाहुञ्च, निर्जघानैव तत्क्षणम् ।
 मारीचञ्च विचक्षेपः, वाणेन शत योजनम् ॥ ६०
 मार्गे तुङ्गशिलां दृष्ट्वा, विश्वामित्रो महामुनिः ।
 प्रत्युवाच रमानाथं, मोक्षदं वर दायकम् ॥ ६१
 पादेन स्पृश हे राम, समक्षां वैशिलामिमाम् ।
 गौतमस्यप्रियां पत्नीं, पति शापेन मोहिताम् ॥ ६२
 सा नास्नासीदहिल्येयं, स्वापराधेन वै तदा ।
 छद्मना देव राजस्य, पाषाणत्वमवापसा ॥ ६३
 श्रुत्वा मुनेस्तु संवादं, रामो राजीव लोचनः ।
 अहिल्यायाः समुद्धारं, सम्यक्कर्तुं मनोदधे ॥ ६४

रामस्य चरणं स्पर्शत्, सा जाता वै वराङ्गना ।
 रामं प्रणम्य साहित्या, प्रार्थनां सञ्चकारतु ॥ ६५
 हे राम कृष्णा नाथ, भक्त वत्सल रक्षमाम् ।
 आविर्भूतोसि हे नाथ, राक्षसानां वधाय च ॥ ६६
 मोक्षं रामेण संप्राप्य, पादौ स्मृत्वा वराङ्गना ।
 इति रामं प्रशंसन्तो, पति लोकं जगाम सा ॥ ६७
 अहिल्योद्धार कार्यसः, कारयित्वा महामुनिः ।
 श्रीराघवं प्रशंसन्वै, ताभ्यां सह पुरीं ययौ ॥ ६८

प्रथमो विरामः

पुनरग्रे प्रवक्ष्यामि, सावधान तथा शृणु ।
 शान्तिं दं शुभं दं शिष्य, पुण्यं साध्यं कथानकम् ॥ ६९
 प्रभुतां च परिज्ञाय, श्रीरामस्य महात्मनः ।
 आत्मानं निर्भयं मत्वा, सजगाम निजाश्रमम् ॥ ७०
 मुनियज्ञं समारेभे, सोत्साह मनसा तदा ।
 यत्न रक्षां विचक्राते सुवीरौ राम लक्ष्मणौ ॥ ७१
 तस्मिन्नेव शुभे काले, मिथिलायां विशेषतः ।
 पुत्र्या जनक राजस्य, स्वयम्वरमभूत्तदा ॥ ७२
 तन्निमित्तं समुद्दिश्य, विश्वामित्रं मुनिं प्रति ।
 नृपेण प्रेषितो दूतः, कौशिकं समुपागतः ॥ ७३
 कुमाराभ्यां समं श्रेष्ठो, विश्वामित्रो महामुनिः ।
 मखशोभाञ्च संद्रष्टुं, जगाम मिथिलापुरीम् ॥ ७४
 तेषां मागमनं श्रुत्वा श्रीजनको नृपोत्तमः ।
 आतिथ्यं विदधे भक्त्या, सकुमारं महामुनिम् ॥ ७५

समीचीनं निवासञ्च, विशेषार्थं समाददौ ।
 ये राजानः समाजग्भु, स्तान् सर्वान्त्रै व्यतोषयत् ॥ ७६ ॥
 एकदा सुखमासीनं, मुनिं प्रपच्छ राघवः ।
 शिष्यस्य लक्षणं ब्रूहि, भक्त सन्निधि कारकम् ॥ ७७ ॥
 रामस्य वचनं श्रुत्वाप्रत्युवाच तपोधनः ।
 गुरवानन्य भक्तिः स्या, दनु शासन तत्परः ॥ ७८ ॥
 स्वल्प निद्रस्तु निर्लोभी, स्वल्प भोजी च वाक् पटुः ।
 सेवाया मनुरक्तञ्च, निरालस्यो हितकरः ॥ ७९ ॥
 त्यागी सत्य समाविष्टो, मेधावी पठन प्रियः ।
 एतल्लक्षण युक्तस्तु, जिज्ञासुः शिष्य उच्यते ॥ ८० ॥
 उक्तवा वचन मेतत्तु, कुमारविद मुक्तवान् ।
 आनयतांसुपुष्पाणि, मिथिलो पवना द्द्रुतम् ॥ ८१ ॥
 एतच्छ्रुत्वा विभूरामो, लक्ष्मणश्च महातपः ।
 उद्यानं जग्मतुः क्षिप्रं, जनकस्य महात्मनः ॥ ८२ ॥
 तस्मिन्नेवशुभकाले, सखीभिः सहजानकी ।
 वाटिकां शोभनां रम्यां, दर्शनाय समाययौ ॥ ८३ ॥
 प्रिया सखीस्तु तास्त्यक्तवा, वाटिकां भ्रमणाय हि ।
 एका सखी विदग्धावै, किञ्चद्दूरं समागता ॥ ८४ ॥
 राम रूपं हि संदृश्य, सखी सैव विमोहिता ।
 प्रिय सरन्यः समादृश्य, तामूचुः संगतां सखीम् ॥ ८५ ॥
 हे वयस्ये किमर्थं त्वं, प्राप्नुया गतिमीदृशीम् ।
 ब्रूहि तत्कारणं सुभ्रु, पप्रच्छुर्विनयान्विताः ॥ ८६ ॥
 संदृश्य सुन्दरौ रूपौः संमुमोह कुमारकौ ।
 विदग्धासा, सखी श्रेष्ठा, प्रत्युवाच सखीस्तदा ॥ ८७ ॥
 त्रैलोक्य मोहनं रूपं, द्वयोश्च सुकुमारयोः ।
 दृष्टवा चाकर्षिताहवै, वन मागत योस्तदा ॥ ८८ ॥
 कोटिकामान् विलज्जन्तौ, श्याम गौर मुखाम्बुजौ ।
 विश्वं विमोहयन्तौ तौ, वाटिकान्तः समागतौ ॥ ८९ ॥

प्रिय सख्या वचः श्रुत्वा. तत्र सीतां जगाम हि ।
 वृत्तान्तरे हि तिष्ठन्ती, श्रीरामञ्च ददर्श सा ॥६०॥
 तदा सीतामसौरामो, हर्षं विह्वलतेक्षणाम् ।
 उडुराज मुलीश्यामा, पश्यन्वै मुमुहे द्रुतम् ॥६१॥
 रामस्य दर्शनात् सीता, तल्लावण्येन मोहिता ।
 सीतां निरीक्ष्य रामोऽपि, तत्सौन्दर्येण मोहितः ॥६२॥
 अन्योन्येक्षणं सम्बन्धा, दुभौ प्रेम विमोहितौ ।
 तदा वृत्तान्तरे लीनः रामः सद्योऽभवत्क्षणे ॥६३॥
 पूजा बेलं समा सादय, पुष्पाणां चयनं कृतम् ।
 आगच्छतां कुमारौ तौ महर्षेराश्रमं तदा ॥६४॥
 गुरुं प्रणम्य रामेसौलक्ष्मणे न समन्वितः ।
 शुभाशिषं गृहीत्वावै, पुष्पाणि गुरवेददौ ॥६५॥
 विशिष्टैः पुष्प माल्यैः सः, पूजा चक्रे जगत्प्रभोः ।
 परमोद मुपालेभे, सच्छिष्य सेवया मुनिः ॥६६॥
 मन्त्रि वर्यान् समाहूय, जनको योगिनां गुरुः ।
 प्रारम्यतां धनुर्यज्ञ, इत्युवाच नृपस्तदा ॥६७॥
 चित्र सिंहासनो पेतं, रत्नवैडूर्य शोभितम् ।
 हिरण्य रजतोपेतं, विस्तरेण परिष्कृतम् ॥६८॥
 मख मञ्चं समागम्य, श्रावयन्त हि महत्पणम् ।
 नृपादेशञ्च सश्रुत्य, जग्मुस्ते सचिवोत्तमाः ॥६९॥
 तान् तत्र स्थापयामासु, रथास्थानं सुचारकान् ।
 तच्छोभां दर्शनार्थस्वै, राम लक्ष्मण कौशिकाः ॥७०॥
 मख स्थलीतुते जग्मु, दर्शनीयां मनोहराम् ।
 वर्णनीयां सुदिव्याञ्च, रम्यां सीता स्वयम्बराम् ॥७१॥
 तान्वै समागतान् दृष्ट्वा, जनकश्च नृपोत्तमः ।
 तथा मन्त्रि गणाः सर्वे, सूता मागध वन्दिनः ॥७२॥
 परम्प्रभुं हि तं रामं, लक्ष्मणं कौशिकं मुनिम् ।
 सादरते मनस्कृत्य, चास्थापयन् वरासनम् ॥७३॥

सर्वान् विशिष्ट भूषाञ्चान् नानादेश समामवान् ।
सुयोग्यान् स्थापयामासु, येषां स्थानं हि चारकाः ॥१०४

द्वितीय विरामः

ततः सीता समायाता, रत्नकैश्च सुरक्षिता ।
दर्शनाय परंप्रेम्णा, भवान्या मन्दिरं शुभम् ॥१०५
भवानी मर्चयाञ्चक्रे; भवपत्नी भवान्विताम् ।
पार्वती कुलदेवी वै, स्वसन्तान युतां शिवाम् ॥१०६
षोडशार्चा विधानेन, प्रसन्नाभूच्च पार्वती ।
सीतोवाच तदा देवी, प्रसन्नां पार्वतीं प्रति ॥१०७
हे गिरिजे विषालाक्षि, तपस्विनि भव प्रिये ।
हे सुन्दरि नमस्तुभ्यं, पूर्णं मे स्यान्मनोरथम् ॥१०८
राममेव वराकाङ्क्षी सीतां सर्वाङ्ग शोभनाम् ।
प्रहृष्य गिरिजा देवी, ह्युवाच जनकात्मजाम् ॥१०९
हे सीते तव सौभाग्य, मनन्तं वै भवेत् सदा ।
यावत्सुरसरौ धारा, वद्यते पृथिवी तले ॥११०
त्वदिच्छा फलितास्याद्वै, स्वस्था भव शुचिस्मिते ।
संप्राप्य वरदानं, सीता हर्षं मुपागता ॥१११
पूज्याः पतिमती नारी, महोर्हं भूषणादिभिः ॥
पुपूज विधि वत्सीता राम सेवाभि काञ्क्षिणी ॥११२
विप्रस्त्रियः प्रसन्नाश्च, प्रददुश्च शुभाशिषम् ।
काञ्क्षितं सुवरं सौम्ये, प्राप्नुयास्त्वं सुशोभने ॥११३
सीता सखी जनैः सार्धं, यज्ञ स्थान समाययौ ।
धनुषः पूजनं कृत्वा, यज्ञ शोभामलोकयत् ॥११४
ध्यायन्तीहृदि रामञ्च, जगाम निज मन्दिरम् ।
अथ पौरास्तु नार्यो वै, परस्परं वदन्ति च ॥११५

राममेव वरं श्रेष्ठ, मिति सर्वा अचिन्तयन् ।
 ब्रह्मणस्तु स्तुतिं कृत्वा, तेध्यायेद्युश्च शंकरम् ॥११६
 सुतायास्तु तपस्विन्या, नृपस्य जनकस्य च ।
 राम एव पतिर्भूयात् धाता तदनु मोदताम् ॥११७
 इति नागरिकाः सर्वे, कथयन्तः समुत्सुकाः ।
 ये ये जनाः समाजग्मु स्तस्यै प्रददुराशिषम् ॥११८
 अथ सीताहि शोचन्ती, शोकसागर मञ्जिता ।
 शैवंचापं समालोक्य, जगदित्थं वचस्तदा ॥११९
 राघवः सुकुमारोऽयं, वज्रकल्पो धनुस्तथा ।
 पितुः प्रणं तु दुर्धर्षं, कथं भंगं करोति वै ॥१२०
 वज्र काठिन्यं तुल्यं यत् सद्धनु ह्यनु मीयते ।
 कथं करोति सोऽध्वज्य, मात चिन्ता वलीयसी ॥१२१
 शोक मित्थं प्रकुर्वन्ती, सीता सुर सुतोपमा ।
 ध्यायन्ती हृदि सात्यन्तं, भवानोञ्च भवान्विताम् ॥१२२
 एवं चिन्तयती वाला, शोकपारम वाप न ।
 सीतया सहिताः पौराः परं शोकं मुपागमन् ॥१२३
 तदा ते प्रवराः सूता, वर्तमाने महोत्सवे ।
 जगदुर्वचनं श्रेष्ठं, तत्रत्यां राज संसदि ॥१२४
 नृपस्य पणं मेतत्तु, शृण्वन्तु राज सत्तमाः ।
 भङ्गं चापस्य यः कुर्यात्, सः सीताम् वृणुयाद्वरः ॥१२५
 प्रणं श्रुत्वा हि राजानः कङ्किवद्धाः समाययुः ।
 शिवस्य चापं भग्नार्थं, मुद्यताः परमोत्सुकाः ॥१२६
 सहोद्योगा भटास्तत्र, निरुद्योगा भवन्ति हि ।
 सर्वे वै चक्रुर्द्योगं, यथा वीर्यं यथा बलम् ॥१२७
 न विचेलुश्च तत् सर्वं, तिलमेकं वलीनृपाः ।
 एकी भूता गताः सर्वे, तद्धनुर्न चक्रम्पिरे ॥१२८
 हत वीर्यान् तथा दर्पा, न समर्थान् नृपान्तदा ।
 दृष्ट्वा जनक राजस्तु, विषादं समुपेयवान् ॥१२९

जगाद जनको जेता, स्वयम्बर महोत्सवे ।
 यूयं ऋणुत राजानो, वीर हीना वसुन्धरा ॥१३०॥
 स्वात्मानं केषपि वीरामा, कथयन्तु नृपोत्तमाः ।
 निर्गच्छन्तु हि चेदानीं, क्षिप्रं वै स्व निकेतनम् ॥१३१॥
 तदा राज्ञो वचः श्रुत्वा, लक्ष्मणः पर वीरहा ।
 मुनिं संमन्य तत्काले, जगाद नृप संसदि ॥१३२॥
 हे नृपोत्तम यद् वाक्यं, भवता समु दीरितम् ।
 तन्नो चितं तु राजर्षे, राघवाणां हि सन्निधौ ॥१३३॥
 आज्ञाचेद् रामचन्द्रस्य, चाप भग्नं करोमि वै ।
 असह्यं वचनं वज्रं, न शृण्वन्ति रघूत्तमाः ॥१३४॥
 तदा मुनिवरः श्रेष्ठो, विश्वामित्रो महामुनिः ।
 ददा वाज्ञांसु रामाय, चाप भंगाय तत्क्षणम् ॥१३५॥
 गुरो राज्ञां समादाय, श्री रामः पुरुषोत्तमः ।
 अगच्छच्चाप भग्नार्थं, महादेवं स्मरन्तदा ॥१३६॥
 ततो हि लक्ष्मणो वीरः सूर्यस्य च विधोस्तथा ।
 पृथिव्याः सर्वं लोकानां, कम्पनाच्च ररर्क्षहि ॥१३७॥
 आरुह्य मख मञ्चं सः, शैवं चापमखण्डयत् ।
 केनापि वै न तद् दृष्टं, वरं कार्यं सुदुष्करम् ॥१३८॥
 सखी जनैः समं सीता, समागत्य मखस्थलम् ।
 हस्तो संगृह्य मालांच, सुकण्ठे वै समर्पयत् ॥१३९॥
 दिवि दुन्दुभयः नेदु, आकाशेहि दिवौक साः ।
 तदा जय जया रावं, मुनयश्चागदन्तपाः ॥१४०॥
 पुष्प वर्षा तदा भूद्वै, बरवध्वाश्च संयुते ।
 बन्दे वै जानकी रामौ, प्रकृतिं ब्रह्म रूपिणौ ॥१४१॥
 चापस्य खण्डनाच्छब्दं, यदब्रह्माण्डमपूरयत् ।
 भार्गवस्तद् ध्वनिं श्रुत्वा, स्वासनादुच्च चाल वै ॥१४२॥
 तदा तु भीषणा कारो, महावातः समुत्थितः ।
 घूलिघूसर संवातः पूरया मास मण्डपम् ॥१४३॥

तन्महावात मालोक्य, भय भीताः सभा सदाः ।

के चिदु चुर्महावातम्, के चिच्च भार्गवं प्रति ॥१४४

विशाल भाल तैजस्वी, यशस्वी च तपो निधिः ।

पूज्यः परशुरामो वै, यज्ञ मंच मुपागतम् ॥१४५

तदा सर्वे हि भूगला, राम लक्ष्मण कौशिकाः ।

शतानन्दश्च वैदेही, नमश्च क्रुर्मदान्विताः ॥१४६

भूतनूजा महादेवी, सीता चन्द्र मुखौ तदा ।

श्रेष्ठं मुनिवरं दान्तं, ननाम चैव भार्गवम् ॥१४७

विश्वामित्रादि सर्वेभ्यः, शुभार्शीवचनं ददौ ।

चाप भग्नं समालोक्य, क्रोध विह्वल भार्गवः ॥१४८

पूज्यं मे गुरु देवस्य, केन चापं तु खण्डितम् ।

राजर्षोभक्त वैदेह, कथयस्व नृपोत्तम ॥१४९

जानक्या सुविवाहार्थं, प्रणमे तत्कृतं मया ।

चाप भग्नं तुयः, कुर्यात् स तु सीतां विवाह येत् ॥१५०

इत्युवाच, नृपस्तं वै, जनको मौन मास्थितः ।

मौन मालोक्य वैदेहं क्रोधिनश्चापि भार्गवम् ॥१५१

दृष्ट्वा क्रोध समायुक्तो, लक्ष्मणश्च जगाद तं ।

क्षणं विश्रम्यतां धीमत्, किं वै क्रोधं करोसि भोः ॥१५२

भग्न्या जीर्णं चापाय, विवादयसि किं बहु ।

धूर्त लक्ष्मण किं ब्रूषे, त्वां हन्मि वक्रवादिनम् ॥१५३

शिव चाप विनष्टारं, हनिष्यामि वधार्हणम् ।

इत्युग्र वादिनं विप्रं, प्रत्युवाच हि लक्ष्मणः ॥१५४

बाल्ये चैतादृशं चापं हनेकञ्च विखण्डितम् ।

किन्तु श्रीमन् कदाचिद्वै, नैवं रोषं त्वया कृतम् ॥१५५

कर स्पर्शनमेभ्रातु, जीर्णं चापं तु खण्डितम् ।

भवाञ्च यदि तापः स्यात्, योजयिष्यामि सत्वरम् ॥१५६

कलाकारं समाहूय, जीर्णं चाप तव प्रियम् ।

पुनः संयोजयिष्यामि, धनुः शैवं पुरातनम् ॥१५७

हे विप्र श्रूयतां तावत्, किं वै न्यथं ब्रवीषि भोः ।
 सन्निधौ रघुवश्याना, नोचितं गदिब त्वया ॥१५८
 लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा, क्रोधेन तमसा वृतः ।
 भागवः शस्त्रमुत्ताम्य, लक्ष्मणं निर्जगाद हि ॥१५९
 एकविंशतिवारं वै, क्षत्रियान्तकरो हि यः ।
 प्रख्यातं भुवने चास्य, कुठारं करभूषणम् ॥१६०
 तेनैव सह रे दुष्ट, शाठ्येन त्वं विवर्त्तसे ।
 ततस्त्वां निह निष्यामि, क्रूरं परशुपाणिना ॥१६१
 वचः सहे न जाने कं, कुठारो न चलत्यसौ ।
 सौ न लक्ष्मणवर्तस्व, न तत्र नथं भविष्यति ॥१६२
 किं न जानसि रे मूढ, क्षत्रियान्तकरो हि माम् ।
 खिद्यसे त्वं हठाद् भूयः, प्राणान् तव हरान् वै ॥१६३
 भार्गवस्य च संवादं, धीमता लक्ष्मणेन च ।
 शुश्राव रामचन्द्रोऽसौ, भार्गवं प्रत्युवाच हि ॥१६४
 हे महर्षे महाप्राज्ञ, सुरार्चितपरन्तप ।
 वयं तु राववास्तात, नेदं शृण्वन्ति वै गदम् ॥१६५
 अयं बालस्तु कैशोरो भवान् बुद्धिः विशारदः ।
 नयोग्यो नैव दक्षश्च, श्रीमाल्लोकपितामहः ॥१६६
 क्षमस्व चापराधं तत्, बालस्य वचनं जहि ।
 अनुजस्य न दाषोऽस्ति, मया चापं तु खण्डितम् ॥१६७
 भवान्ने सर्वं पूज्योऽस्ति, माननीयोऽस्ति सर्वदा ।
 सुविस्तरेण शोचामि, खेदं गच्छति मे मनः ॥१६८
 रामस्य वचनं श्रुत्वा, भार्गवोऽयं महासुधीः ।
 तं ज्ञात्वा परमात्मानं, भवतारममन्यत ॥१६९
 ब्रह्मण्येव हि मे दत्तं, ममि ज्ञानाय साधनम् ।
 संप्रयोज्य तु तज्ज्ञानं, शान्तिं किञ्च लभामहे ॥१७०
 अवतारस्य बोधाय, धनुदत्तं स्वयंभुवा ।
 ज्यामधिज्यं प्रकुर्यादयो, तं जानीहि परं प्रभुम् ॥१७१

विधेर्वचस्तु संस्मृत्य, भार्गवो मुनि सत्तमः ।
 अवतारप्रबोधाय, परीक्षितुं मनोरथे ॥१७२
 रघुनाथाय वीराय, धनुर्दत्तञ्च तेन हि ।
 स एव तनक्षणं नीत्वा, त्वधिष्ठ्य मकराक्षदा ॥१७३
 हन्मोह पटलं हित्वा, जगाम शरणं मुनिः ।
 हेरामं हे रमानाथ, प्रभो विष्णो परन्तप ॥१७४
 सीतापते विभुं श्रेष्ठं त्वामहं शरणं गतः ।
 राक्षसानां विनाशाय, दैत्यानां हननाय वै ॥१७५
 धर्मस्या म्युदयार्थाय, प्रादुर्भवसि भूतले ।
 जामदग्नयस्तु संस्तुत्य, जगाम दिश मुत्तराम् ॥१७६

तृतीयो विरामः

जनको दूत माहूय, शतानन्दानु मोदितः ।
 अयोध्यां गच्छ दूतत्वं, माज्ञा पयत तत्क्षणम् ॥१७७
 पत्र मादाय दूतसौ, साकेत भगमत्तदा ।
 आगतं दूत संवादं, श्रुत्वा हर्षान्वितो नृपः ॥१७८
 राम वैवाहिकं स्तुत्यं, समाचारं विशेषतः ।
 दूतेन चार्पितं पत्रं पठित्वा हर्ष मागतः ॥१७९
 परमानन्द संमग्नः श्रीमान् दशरथो नृपः ।
 गुरुमामन्त्र्यशीघ्रं वै, वार यात्रिक माहूयत् ॥१८०
 बलान्विताञ्च सेनांसः, सज्जी कृत्वा हि तत्क्षणम् ।
 महर्षिभिः समं राजा, प्रस्थितो मिथिलां ततः ॥१८१
 वशिष्ठेन समं विद्वान्, सुधीर्दशरथो नृपः ।
 अचेपिस्कर संयुक्त, माययौ मिथिलां पुरीम् ॥१८२
 श्री रामो लक्ष्मणश्चैव, विश्वामित्रो महामुनिः ।
 समागताञ्जनान्सर्वांन् मिमिलुश्च यथा क्रमम् ॥१८३

जनकश्च शतानन्दः स्तथैवान्ये नृपोत्तमाः ।
 शुभागमन मानेतुं, प्रत्य गच्छन् हि नागराः ॥१८४
 मृदङ्गादीनि वाद्यानि, घटां च गोमुखानि वै ।
 अवाद्यन्त विचित्राणि सुवाद्यानि घनाघनाः ॥१८५
 फल पुष्पैश्च संमिश्रैः, नाना विधि समन्वितैः ।
 सुस्वागतं सभाचक्रे, जनको वै महोदयः ॥१८६
 सुन्दरं निर्मलं दिव्यं, सर्व साधन संयुतम् ।
 निर्मितञ्च हिरण्येन, भवनं सुख दायकम् ॥१८७
 भूमिपस्तद् गृहं रम्यं, निवासाय तदा ददौ ।
 वार यात्रि जनं सर्वं स्थापयामास वै सुधीः ॥१८८
 सर्वान् सं पूजया मास, येऽतिथयः समागताः ।
 राम वैवाह सम्बन्धेषुभकार्यं विदो नृपः ॥१८९
 प्रारभ्यता मिदं यज्ञं, मिति सर्वान् समादिशत् ।
 आवश्यकं कीं सुसामग्रीं, संगृह्य जनकस्तदा ॥१९०
 कोशलेशादि भूपान् वै, समाहूय नृपोत्तमः ।
 उच्चासने वाशिष्ठादीन् स्थापयित्वा च मण्डपे ॥१९१
 प्रारभतु मखं राजा, नरेशाणाञ्च सान्निधौ ।
 वरान् कन्याः समाहूय, विविशुर्मख मण्डपे ॥१९२
 पुपूजश्री गणेशञ्च संपूज्य, गौरीं सूयादि देवताः ।
 ब्रह्माणलोक माह्वस्तुं, शचोन्द्रञ्च शिवं शिवाम् ॥१९३
 वेदानुच्चार यामासु, वेदज्ञा विज्ञ भूसुराः ।
 श्रामता रामचन्द्रेण, सुपाणि ग्रहणं कृतम् ॥१९४
 अम्बरात्युष्प वर्षा भूत्, नेदुर्दुन्दु भयस्तदा ।
 यज्ञे जय जया रावं, चक्रुश्च दिवि देवताः ॥१९५
 श्रीमते रामचन्द्राय, सीतां कन्यां ददौ नृपः ।
 भरताय कुमाराय, माण्डवीं प्रददे मुदा ॥१९६
 लक्ष्मणाय सहिष्ठाय, चोर्मिलां प्रददे ननु ।
 शत्रुघ्नाय लघिष्ठाय, श्रुतिकीर्तिं ददौ नृपः ॥१९७

पाणि ग्रहण सम्पन्नेसुविधाने सुविस्तरे ।
 श्रीजनकस्य संम्राज्ञी, चाजुहाव वरान्तदा ॥१६८
 पक्वान्नं भोजयित्वा हि, सुकीर्तिं संजगोमुदा ।
 वरान् संलालिता प्रेम्णा, परमानन्द मोहिता ॥१६९
 सुव्यञ्जनं समाविष्टं, पक्त्वद्ध च सादरं ।
 सर्वान् संभाजयामास, मिथिलायैसमागतः ॥२००
 समावृत्तेहि वैवाहे, पारिवर्हान् ददौ पुनः ।
 अश्वान् गजान् रथाव्चैव, हिरण्य मददान् नृपः ॥२०१
 पारिवर्हं तु संगृह्य, जनकानु मदस्तथा ।
 राजधानीं जगामाशु, चक्रवर्त्यजनन्दनः ॥२०२
 पुत्रीणां गमने काले, रुरुदुर्मातरः शुचा ।
 परिसर्वाजरे प्रेम्णा, सुपुत्रीस्तु व्यसर्जयन् ॥२०३
 लक्ष्मणो भरतश्चैव, विश्वामित्रस्तु राघवः ।
 वधूभिः सहतेसर्वे, सेनया सहितो ययुः ॥२०४
 सीता रामे यदा यातौ, जगतो हित कारकौ ।
 पुष्पाणि चिक्षिपुः सर्वे, सुर गन्धर्व चारणाः ॥२०५
 अगुरु धूप दीपैश्च, ह्यलंकारै विभूषिताम् ।
 चित्रध्वज पताकैश्च, पल्लवैश्च सुसंस्कृताम् २०६॥
 तत्रायोध्यां सुरभ्यां वै, राजमार्गैः सुशोभिताम् ।
 सज्जिता सुचतुः सेना, प्रविवेश पुरीं ततः ॥ ०७
 प्रासाद शिखरा रूढाः ललनाश्च सुसज्जिताः ।
 श्रीरामं परमात्मानं, ददृशुर्वै समागतम् ॥२०८
 जगद्बन्धां सतींसीतां दृष्ट्वा मोदेन हर्षिताः ।
 लाजाक्षलानि पुष्पाणि, चिक्षिपुश्च समन्ततः ॥२०९
 ब्राह्मणा वेद पाठञ्च, चक्रिरेवै मुदान्विताः ।
 महाजना मिलित्वा तान् पूजां चक्रुर्यथा विधिः ॥२१०
 सर्वे जयध्वनि कृत्वा, परमोद मुपाययुः ।
 वरागुर्षादयः सर्वे, विविशुः स्वं निकेतनम् ॥२११

रामचन्द्रो वरः श्रेष्ठो, वधूः जनक नन्दिनी ।

प्रासादं विविशुः सर्वे; सुमन्त्रादि समन्विताः ॥२१२

सुप्रसन्नः प्रभू रामः, स्वेष्ट देवं तदास्मरन् ।

पितृणां भवनं गत्वा, पितृन् सर्वान् ततपे वै ॥ २१३

श्री गणेशञ्च संपूज्य, शिष्टाचार कुलागतम् ।

कुल पूज्यं दिनेशञ्च, नान्दा श्राद्धं तदा करोत् ॥ २१४

ऊर्ध्वं रेतान् मुनीन्सर्वा, नमात्यादोन् तथैव च ।

भोजयित्वा द्विजान् श्रेष्ठान्, परं मोद मुपागमत् ॥ २१५

समायाता यदा सीता, न्यवसन् चाष्ट सिद्धयः ।

अयोध्या मुख सम्पन्ना, सर्वकाल सुखा वहा ॥ २१६

लक्ष्मी रूपा सती, सीता विष्णु रूपा हि राघवः

अयोध्यां तौ समाविष्टौ रमा क्रीडात्वं भूत्तदा ॥ २१७

राम वृत्तं तु संदृश्य, मुदितास्तेऽभवज्जनाः ।

सदारान् खसुतान् दृष्ट्वावैजहर्षं नृपः सुधीः ॥२१८

रामस्य सुन्दरं शीलं, व्यवहारं तथैव सत् ।

दृष्ट्वा चाकर्षिताः सर्वे, मुदमापुः सुसज्जनाः ॥२१९

जानकी बल्लभंराम, कोटिकाम समप्रभम् ।

लोकहृल्लोचनावर्ण्यं, वन्दे सगुण चिन्मेयम् ॥ २२०

सीता पतिं प्रभुं वन्दे, योगिध्येयांश्चि पङ्कजम् ।

राक्षसानां निहन्तारं, कलैः पाप विनाशकम् ॥ २२१

भव्यं दिव्यं चरित्रं वै रामचन्द्रस्य धोमतः ।

ये पठान्त मुदा भक्त्या, विमोक्षमापुर्वान्त ते ॥ २२२

सदा लेख्यं, सदा लेख्यं, रामस्य चरितं महत् ।

सर्व पाप हरं पुण्यम्, शृणुर्हेशिष्य मद्वचः ॥ २२३

रमेश योगेशं भव भय हरं विश्व भरणम् ।

सदानन्द रामं भरत सुखदं बन्धु वरदम् ॥२२४

भजे सीतेशं तं मुनि जन तुतं राक्षस हरम् ॥
नमामीशं विष्णुं भजन निरतं भक्तवरदम् ॥ २२४

चतुर्थो विरामः

इति श्री पं० रामविशाल शास्त्रि विरचिते श्रीराम चरितम्

बालकाण्डम् समाप्तम्

श्री गणेशाय नमः

अथ अयोध्याकाण्डम् प्रारभ्यते

प्रभावन्तं शान्तं दशरथ सुतं मुक्त चरितम् ।
अयोध्या नाथं वै प्रिय जनहितं शान्ति शुभदम् ॥
सुभक्तिं दातारं नत जन रतं दोष हननम् ।
भजे प्रेष्ठं रामं चरण युगलं पङ्कज समम् ॥१
उमा महेश्वरौ देवौ; तौ शब्दार्थौ स्वरूपिणौ ।
जगतः पितरौ वन्दे, मोक्षदौ वर दायकौ ॥२
सीतावृतो यदा रामः, साकेतं समुपागतः ।
तदा भूः शोभना जाता, नूतना नित मंगला ॥३
मांगलिकानि कार्याणि, संभवन्ति गृहे गृहे ।
मही मंगल भूयिष्ठा, राजधान्यां तदा भवत् ॥४
निर्मला सरयू धारा, तरङ्गैस्तु सुशोभते ।
श्री रामे वै रमानाथे, सत्युत्साह समन्विता ॥५
अयोध्या नगरी रम्या, मोक्षदा सा तदाभवत् ।
वर्तमाने रमानाथे, सर्व संस्कार संस्कृता ॥६

मन्त्रि प्रवर संयुक्तः, श्रीमान् दशरथो नृपः ।

सिंहासने समासीनो, गृहोत्वा दर्पणं तदा ॥७

सज्जनानां तु संगोष्ठ्या, मपश्यन्मुख मण्डलम् ।

पलितत्वं गतं केशं दृष्ट्वा राजाति विस्मितः ॥८

शृणुध्वं सचिवाः सर्वे, शित केशं गतोऽस्म्यहम् ।

जरठत्वं समायात, मिति मे निश्चिता मतिः ॥९

रामाय राज्य योग्याय, यौवराज्यं ददामि वै ।

मतं मम समा मन्य, ब्रध्वं वै सचिवोत्तमाः ॥१०

पूज्य मस्ति सुयोग्यं वा, समीचीनं मतं तव ।

हर्षेण प्लाविताः सर्वे, जगदुस्ते च सज्जनाः ॥११

सभ्यानां मत माकर्ण्य, योग्यो दशरथो नृपः ।

समाहूय गुरुं शीघ्रम्, तन्मन्त्रं मन्त्रणायतु ॥१२

समागतं वशिष्ठञ्च, ववन्दे प्राह राघवः ।

सर्वेषां मत माज्ञाय, कथयामि मुनीश्वर ॥१३

यौवराज्य मिदं देहि, श्री रामाय महात्मने ।

नृपस्य बचनं श्रुत्वा, पुण्यञ्च सार गर्भितम् ॥१४

सभायां मुनि नोक्तं वै, पूजनीयं मतं तव ।

यौवराज्य पदं शीघ्रं, देहिस्मै नृपोत्तम् ॥१५

सम्पादनाय तत्कार्यं, विनियोजय सेवकान् ।

सुमुहूर्त्तं तु तद्विद्धि, यद्वै रामोऽभिषिच्यते ॥१६

आनयन्तां समुद्रेभ्यः पूर्जार्हं वै जलं शुचिः ।

प्रातः संयुज्यता माशु, पूजा द्रव्यं सुसाधनम् ॥१७

सन्दिश्यैव माराजं, वशिष्ठः स्वगृहं गतः ।

गुरोर्वाक्यामृतं श्रुत्वा, सर्वान् वै निदिदेशसः ॥१८

आहरध्वं सुसंभारा, नानयध्वञ्च वैदिकम् ।

पूजनार्थं सुपुष्पाणि, शृण्वन्तु सचिवोत्तमाः ॥१९

आज्ञां प्राप्य सदस्यास्ते, प्रोत्साहन समन्विताः ।

तत्कार्याय समाजग्मु, रभिषेकाय हर्षिताः ॥२०

कार्यं दूताहि संलग्ना, राम राज्याभिषेचने ।
 रामाभिषेक मुदिश्य, पुरीपूज्यां व्यभूषयन् ॥ २१
 अभिषेकं समुदिश्य, रामं वै शिक्षितुं तदा ।
 श्री वशिष्ठः सुमन्त्रेण, श्री रामञ्च समह्वयत् ॥ २२
 समागतस्तु रामोसौ, वशिष्ठं त्वम्यवाद्यत् ।
 गुरुः शुभाशिषं दत्त्वा, श्री रामं प्रत्युवाच च ॥ २३
 हे राम स्वागतं तेस्तु, सुशोभस्व शुभासनम् ।
 यौवराज्य पदं तुभ्यं, प्रददाति नरोत्तमः ॥ २४
 योग्योसि माननीयोसि, संगृहाण नृपासनम् ।
 एतदर्थं विभो राम, उपवासं त्वहर्निशि ॥ २५
 सच्छास्त्र नियमान्कृत्वा, कुरुस्वदेव पूजनम् ।
 गुरोराज्ञां शिरोधाय, जगाम रघुनन्दनः ॥ २६
 देवराज सभायां तु, सर्वे देवा भयान्विताः ।
 अयोध्यायाञ्च वृत्तान्तं, शक्रं प्रति न्यवेदयन् ॥ २७
 यत्कार्यार्थं विधातारं भवान् प्रार्थयत्प्रभो ।
 तत्तु सर्वं विनष्टं वै, शक्तानां वधादिभ्यम् ॥ २८
 देव राजस्तु संश्रुत्य, वचनं पारम्पारिकम् ।
 गोब्राह्मण हिताय वै, जगत्कल्याण कारकम् ॥ २९
 सुसम्पन्नाय तत्कार्यं, मर्चनीयां सुश्रवरीम् ।
 शुक्लां सरस्वतीं देवीं तत्क्षणं वै समाह्वयत् ॥ ३०
 तदा देवी समायाता, तं प्रमुख्य जगाद् सा ।
 देवराज किमर्थं भोः, समाहूता त्वया धुना ॥ ३१
 कथयस्व स्व सङ्गान्तं, भवता यद् विचारितम् ।
 अयोध्यां त्वमुपागच्छ, कार्यं कुरु हितावहम् ॥ ३२
 प्रिया दात्री तु कैकेय्या, शत्रुरायास्त मन्थरा ।
 तस्या बुद्धिं परिभ्राम्य, मन्त्रं वै कार्यं साधकम् ॥ ३३
 गृह भेद करं मन्त्रं, समारब्धाहि च सुव्रते ।
 यस्माद् रामश्च राज्ये वै, न तिष्ठेत्तु कदा चन ॥ ३४

सरस्वती समागत्य, गां गत्वा तत्तथा करोत् ।

निद्रिता मन्थरा दासी, मन्त्रं श्रुत्वा विमोहिता ॥ ३५

उत्थिता मन्थरा शीघ्रं कैकेयीं प्रत्ययत्तदा ।

अयोध्यायां तु संभारा, नाहरन्ति सुनागराः ॥ ३६

सर्वान्सु राज मार्गाञ्च, भूषयन्ति चतुष्प्रथम् ।

जनान् प्रहर्षितान् दृष्ट्वा, मन्थरा विस्मिता भवत् ॥ ३७

एतादृशं समुत्साहं, किं निमित्तं प्रवत ते ।

तानित्यु वाच मार्गे सा, वदध्वं भोस्तु चारकाः ॥ ३८

ऊचुस्ते चारका देवी, शृणुष्व प्रिय वार्दान ।

समागते दिने चैव, रामो राज्येऽभिषिच्यते ॥ ३९

सामन्थरा तु संश्रुत्य, प्रतिकूलं वचोननु ।

न हृष्टा न सुखं लेभे, दुर्विषाद मवाप वै ॥ ४०

कैकेय्या गृहमागत्य, तां विलक्यो प्रहर्षिता ।

आर्ये त्वाम भि वन्दे ऽहं, मन्थरा ते प्रिया सखी ॥ ४१

स्वीकृत्य साभि वादं तु, जगाद मन्थरां तदा ।

कथं वै विमता जाता, तिष्ठ कारण मुच्यताम् ॥ ४२

रामाय हि नृपः प्राज्ञः, भरतो नानु मोदितः ।

बिचारं सुदृढं कृत्वा, यौवराज्यं ददाति च ॥ ४३

इति तद वचनं श्रुत्वा, कैकेयी मुदता भवत् ।

मोदमानां प्रियां दृष्ट्वा, मन्थराह शुचार्पिता ॥ ४४

कल्याणि ते मतिः श्रेष्ठा, न जानामि कुतो गता ।

संभागिनी तु कौशल्या, राजमाता भविष्यति ॥ ४५

दास्यस्मि सैव वर्तिष्ये, त्वं तु दासी भविष्यसि ।

इत्थं श्रुत्वा हि कैकेयी, क्रोधं प्राप्य सु विस्मिता ॥ ४६

कथं वदसि कल्याणि, किं ते मनसि वर्तते ।

रामः प्रियतरो मे वै, कौशल्या च प्रिया सखी ॥ ४७

वक्ष्य से विपरीतं तु, शुभे कार्ये सुसंगते ।

स्वामिन्या वचनं श्रुत्वा, जगाद मन्थरा तदा ॥ ४८

मौनं भवामि हे सुभ्रु व्यर्थं भवति मेवचः
 विचार्यतां महाराज्ञि, दुर्भावंस्व नृपस्य च ॥ ४६
 मातुलस्य गृहादेवि, नाहूतो भरतो मुदा ।
 एतादृशं समुत्साह, विनापुत्रं करिष्यति ॥ ४७
 कौशल्यायास्तु दासी वै, निश्चितं त्वं भविष्यसि ।
 भेदं बुद्धिर्षदारम्भे, तदाग्रे किं भविष्यति ॥ ४८
 भरतस्तव पुत्रो सौ, भविता राम किंकरः ।
 भरते नागते सुभ्रु, नृपोऽयं सुखमाप्स्यति ॥ ४९
 उत्सवस्य समारोहे, सर्वे सभ्या निमन्त्रिताः ।
 भरतागमनं किन्तु, नृपाय न च रोचते ॥ ५०
 इत्थं नृपस्य दुर्वृत्तं, विमूढे किं न बुध्यसे ।
 स्रदास्या वचनं श्रुत्वा, कैकेयो साविमोहिता ॥ ५१
 हे दासि सुभगे मान्ये, वचनं समुदा हृतम् ।
 तत्तु मान्यं हि मेदेवि, यत्त्रयैव विनिश्चितम् ॥ ५२
 कथयस्व स्व सिद्धान्तं, यद्भवत्या विचारितम् ।
 शृणुस्व देवि राद्धान्तं, यन्मया निश्चितं कृतम् ॥ ५३
 राज्ञा पूर्वं वरं दत्तम् संग्रामस्य च संन्निधौ ।
 भरताय सुराज्यं वै, याचस्व प्रथमेन हि ॥ ५४
 द्वितीयेन तु रामाय, जटा वल्कल धारिणम् ।
 नवपञ्च च वषोणि, वनवासञ्च भामिनि ॥ ५५
 संयाचस्व प्रिये शीघ्रं, कुरुष्व मे हितं वचः ।
 कोपागारं समागच्छ, धूम्र वस्त्रं प्रधार्य च ॥ ५६
 चण्डि रूप समाधाय, निश्चितेति मतिर्मम ।
 मन्थरा वचनं श्रुत्वा, साकोप भवन गता ॥ ५७
 राज्याभिषेक वृत्तान्तं, शुभं वक्तुं प्रियान्ति के ।
 तदा नृपः समुत्साहः, कैकेयीं भवनं गतः ॥ ५८

पंचमो विरामः

कैकेयीमुप विष्टांस्वां, धूसराम्बर धारणीम् ।
 तामपश्य तदा राजा, कोपस्य भवने गताम् ६२
 भार्यां खिन्न मुखीं दृष्ट्वा, भूपियो त्रिस्मितो ऽ भवत् ।
 शंकापन्नस्तु संजातः, किमिदं कारणं भवेत् ॥ ६३
 इत्येवं तर्कयन् राजा, सं जगाद प्रियां तदा ।
 हे कल्याणि किमर्थं त्वं, क्रोध सागर मञ्जिता ॥ ६४
 भद्रे उत्तिष्ठ शीघ्रं वै, प्रातः रामोऽभिषिच्यते ।
 किं न दृष्यसि देवि त्वं, श्लाघनी ये महोत्सवे ॥ ६५
 ब्रूहि तत्कारणं शीघ्रं, केन देवी प्रकोपिता ।
 कं तु वै धनिन श्रेष्ठं, निर्धनं करवाण्यहम् ६६
 कं चाद्य बलवन्तं वै, सांप्रतं निबलं क्षणम् ।
 महत्तमं तु कं सुभ्रु, लघुत्तमं नयानि किम् ॥ ६७
 शीघ्रं प्रब्रूहि वामोरु केन त्वहि प्रकोपिता ।
 नृपस्य वचनं श्रुत्वा, कैकेयी पुनर ब्रवीत् ॥ ६८
 त्वं वञ्चयसि मां राजन्, किमित्थं प्रव्रवीसि भोः ।
 गतादृशे महोत्साहे, भरतुं नाह्वयत् प्रभो ॥ ६९
 स्वजना यत्रवै सर्वे सादरंतु निमन्त्रिताः ।
 “किं” कौशल्यैवयोग्यास्ति, सपुत्राहं वहिस्कृता ॥ ७०
 प्रियां मां त्वमना हृत्य, व्यथं किं पारतुष्यसि ।
 दुर्वृत्तं भवतः ज्ञातम् विमोहयसि वै नृप ॥ ७१
 यदि सत्यं प्रतिज्ञस्त्वं, प्रतिज्ञातं वरं द्वयम् ।
 यथोक्तं देहि राजेन्द्र, रत्नस्व वचनं ददम् ॥ ७२
 राज्ञाञ्चण्ड वचः श्रुत्वा, नृपः खिन्न मुखोऽभवत् ।
 हे कल्याणि प्रयच्छामि, पूर्वदत्तं वरं द्वयम् ॥ ७३
 नृपस्य वचनं श्रुत्वा, ययाचे द्वेतु सावरे ।
 भरताय सुराज्यं वै, प्रथमेन वरेण हि ॥ ७४
 द्वितीयेन तु रामाय, प्रयच्छ वनवासनम् ।
 चतुर्दशं समा विद्वन्, विधाय वल्कलाम्बरम् ॥ ७५

पूर्वोक्तं देही राजेन्द्र सत्यवादी भवान् यदि ।
 प्रिय पत्न्यास्तु कैकेय्या, निशम्य क्रूर भाषणम् ॥७६॥
 राजादशरथो विद्वान् मूर्च्छितः निपपातह ।
 धरण्यां पतितो राजानिःसर्गां समवाप सः ॥७७॥
 क्षणं संबुद्ध्य भूपालो जगाद कटु भाषिणीम् ।
 रे चण्डि कथितं यत्तु, तत्तु रामाय नेचितम् ॥७८॥
 प्रथमं तु वरं श्रेष्ठं, द्वितीयं नोचिर्त्तं शुभम् ।
 तव किं कृतवान् रामो, द्वेषं सज्जन वत्सलः ॥७९॥
 ततो भामिनि बुद्धयस्य, पुनःशीघ्रं विचिन्तय ।
 सुचिन्त्य, वद कल्याण, किं मां त्वं परिखिद्यसे ॥८०॥
 त्वं भविष्यसि सस्यं वै, निन्दिता प्राण घातिनी ।
 नृपस्य वचनं श्रुत्वा, राजानं व्याज हारसा ॥८१॥
 राजेन्द्र शृणुमे वाक्यं, सत्यं कुरु सपद्यपि ।
 सत्याद् विचलितो भूतो, ममप्राणान् हरिष्यसि ॥८२॥
 मद्वक्त्य मन्यथा न स्या, दिति सस्यं ब्रवीम्यहम् ।
 क्रूरां दुष्टां शठां ज्ञात्वा, राम शोकेन मूर्च्छित ॥८३॥
 इत्थं विवदमानोऽसौ, निद्रा शान्ति पराङ्मुख- ।
 मोह शोक समा विष्टो, नृपश्चिन्तातुरो ऽ भवत ॥८४॥
 एवं तु ह्यति शोकेनुसासर्वा शवंरी ग ॥ ।
 अथ प्रातः समुत्थाय, सुमन्त्रो मन्त्रि सत्तम ॥८५॥
 राम राज्याभिषेकाय, राजधानी मुपागतः ।
 राजधान्यां समुत्साहः, किन्न तु लक्ष्यते ऽ धुना ॥८६॥
 किन्तु प्रातः सुकाले वै, नोदतिष्ठ नृपोत्तमः
 नृप मन्वेषणार्थञ्च, कैकेयाः सदन गतः ॥८७॥
 मूर्च्छितं पीडितं दृष्ट्वा, समुत्थाप्य नृपं तदा ।
 एतादृशीम वस्थां वै, किमर्थं भोः समागतः ८८॥
 शोकान्वितो महाराजो, जगाद सचिवोत्तमम् ।
 कैकेय्या कुल घातिन्या, सर्वं कार्यं विनाशितम् ॥८९॥

मनोरथं हि मे पूर्णं, न कदाचिद् भविष्यति ।
 दुष्टामा दुश्चरित्रेण, रघुवंशो विनश्यति ॥६०॥
 हे मित्रवर मे प्राणा, विना रामं चलन्ति हि ।
 दुष्टा ददाति कैकेयी, रामाय वन वासनम् ॥६१॥
 इत्युक्त्वा तु महाराजो, मुर्च्छितो निपयात ह
 नृप मुत्थाप्य मन्त्री वै, राजानं तम बोधयत् ॥६२॥
 सज्ञां लब्ध्वा तदा राजा, राममाहूत वान् प्रियम् ।
 हेराम वक्ष्यमाणस्तु, मुर्च्छितो धरणी मयात् ॥६३॥
 समागतस्तु रामोसौ, तदवस्थं नृपं तदा ।
 व्याकुलं तं नृपं दृष्ट्वा, परं खेदं मुपागमत् ॥६४॥
 मातः किं कारणं आत्र, विकलामीदृशीं दशाम् ।
 समापन्नस्तु राजायं समाचक्ष्व निदेशनम् ॥६५॥
 तवराम पिता मह्यं, पूर्वं दत्तं वरं द्वयम् ।
 पुत्राय याचितं राज्यं, तुभ्यं वै वन वासनम् ॥६६॥
 चतुर्दश समा राम, गमनं वन वासनम् ।
 एतत्तु बचनं श्रुत्वा, राजा दुःखं मवाप वै ॥६७॥
 निशम्य वचनं मातू रामो राजीव लाचनः ।
 सत्यत्वं पितुराज्ञाय, वनं गन्तुं मनोदधे ॥६८॥
 हे शिष्य कथयामि त्वां, विधातुः कुटिला गातः ।
 यस्तु प्रातर्भवेद् राजा, सरामौ वै वनं व्रजेत् ॥६९॥
 तत्संवादं मभि ज्ञाय, ब्रह्माचारा स लक्ष्मणः ।
 तत्समीपं जगामाशु, राम सेवा रतः सदा ॥१००॥
 तं दृष्ट्वाह समेधावी, प्रणि पत्यं च ।
 किमर्थं मीदृशं ध्यानं, संधारयसि हे प्रभो ॥१०१॥
 लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा, श्रीरामस्तमभाषत ।
 वनं गच्छामि चाद्यैव, कैकेय्या वचनेन तु ॥१०२॥
 हे प्रभोऽहं त्वया सार्धं, व्रजामि स्वहितेच्छया ।
 अनुमोदस्व मे याञ्जाम्, सफलं स्थान्मनोरथम् ॥१०३॥

हे भ्रातवै वनं तत्र, सर्वं कालं दुखा वहम् ।
 कष्टं दं सुखदं नैव, वनञ्चास्ति भया वहम् ॥ १०४
 न सुखं न दुखं मन्ये, भवत्सेवा रतः सदा ।
 तव सेवा नुरक्तो हं, सदा तिष्ठामि हे प्रभो ॥ १०५
 भ्रातुर्वाक्यं समाधाय, वनाय संमितिं ददौ ।
 तद् वाक्यं लक्ष्मणः श्रुत्वा, कृतं कृत्य ममन्यत ॥ १०६
 मुनेर्वैषं विद्यायाशु, रघुवंशः शिरोमणिः ।
 दर्शनार्थं स्वमातुर्वै, जगाम भवनं तदा ॥ १०७

षष्ठा विराम

रम्यं मातृ गृहं गत्वा, मातरञ्चाभ्यं वादयत् ।
 प्रत्युवाच प्रभू रामः, सुपूज्यां मातरस्मुदा ॥ १०८
 हे मात श्चाद्यं गच्छामि, कैकेय्याश्च समाज्ञया ।
 व्याघ्रं सेव्यं वनं श्रेष्ठं, कल्याणाय पितुर्वचः ॥ १०९
 एतादृश्यां समस्यायां, किं ब्रवीमिहि पुत्रक ।
 द्वौ विषयौ तु गूढौस्तः, निष्फलञ्चाद्य मे वचः ॥ ११०
 यावत् सुरसरौ धारा, विद्यते पृथिवी तले ।
 तावत् कीर्तिस्तुते भूयात्, जगत्कल्याण कारिका ॥ १११
 ते पन्थानः शुभाः सन्तु, वनं गच्छ च सुव्रत ।
 सुमातु हृदयं पुत्रं, न कदापि विमुञ्चति ॥ ११२
 समस्यां तां विमृश्यैव, वनाय गमनं शुभम् ।
 उभयोर्वार्तयोर्मध्ये, तत्र सीता समागता ॥ ११३
 स्वामिनं मातरञ्चैव, प्रणम्य संजगाद सा ।
 वनं प्रति गमिष्यामि स्वामिन्नद्यत्वया सह ॥ ११४
 किं चिकीर्षसि हे बाले, गृहं निवस जानकि ।
 सिंह व्याघ्राद संयुक्तं, वनञ्चास्ति भयावहम् ॥ ११५

तत्र मा गच्छ हे देवि, रौद्रं राक्षस सेवितम् ।

सुकुमारि वने कष्टं, सहसे त्वं कथं सदा ॥ ११६

मातुः पितुश्च शुश्रूषां, मुदा कुरु वरानने ।

यदा कदा पितु र्गै हे, निवासं कुरु भामिनि ॥ ११७

वीभत्साञ्च गुफां दृष्ट्वा, स्त्वान् क्रूर मुम्रान्तथा ।

वन्य शीतल वायुञ्च, सहसे त्वं न जानकि ॥ ११८

स्वामिनो वचनं श्रुत्वा, न लेमे सा सुखं तदा ।

शशांस परमोद्विग्ना; नर श्रेष्ठं सुराधवम् ११९

कथं वदसि हे राम, त्वं विद्वान् नर पुंगवः ।

किं पुरुषस्य छाया वै, क्वचिदिमन्ना प्रवर्तते ॥ १२०

यथा चन्द्रस्य विद्युद्गै, व्यतिरक्ता न विद्यते ।

यथा सूर्य, प्रभा राजन्, तदरहिता न चास्ति हि ॥ १२१

छाया भूता कथं सीता व्यतिरक्ता प्रवर्तते ।

वामाङ्गे भूषिता, सीता पृथग् भूता कथं वद ॥ १२२

भवान्यत्र सुरामोयं, वनं तन्न सुखावहम् ।

कण्टका विद्ध मार्गं वै सुखदं चास्ति मे सदा ॥ १२३

अयोध्यायां प्रभो राम, स्थास्यामि त्वां विनाकथम् ।

प्राणाञ्च मे निरस्यन्ति विना त्वां हे रघूत्तम ॥ १२४

रम्यं स्थलञ्च तत्रैव, यत्र रामो हि विद्यते ।

विना पतिं सतीनारी, “कदापि लभते सुखम्” ॥ १२५

वनाय संमतिं देहि, त्वं प्रसीद नरोत्तम ।

तव दासी नता सीता, दिनं कथं मयास्यति ॥ १२६

अवश्यमेव गच्छन्ती, वनाय निश्चितां मतिम् ।

वनं भयाकुलं ज्ञात्वा, कौशल्या निर्जगाद ताम् ॥ १२७

वनं मृगगणा कीर्णं, नाना सत्त्व निसेवितम् ।

भयदञ्चाति वातञ्च, कष्टं सेव्यं सदैव हि ॥ १२८

हे सीते सुभगे मान्ये, क्रियते य मया कदा ।

कस्मिन्नपि रता कार्ये, कथं वनञ्च गच्छसि ॥ १२९

वनं मा गच्छ हे सुभ्रुत्वंसविद्धि सुलोचने ।
 किञ्चित् कार्यं वने नास्ति तव वै वाम लोचने ॥१३०॥
 श्वश्रा इत्याग्रहं दृष्ट्वा, सीता लोक हितैषिणी ।
 उवाच च विनम्रा सा, मातरं लोक मातरम् ॥१३१॥
 पतिनासह हे मातः, गमिष्यामि वनं मुदा ।
 मतमोनश्चतं विद्धि, ब्रजिष्यामि न संशयः ॥१३२॥
 इत्याग्रहं समाज्ञाय, रामो राजीव लोचनः ।
 जगन्मात्रे च सीतायै, वनाय संमतिं ददौ ॥१३३॥
 तदा सीता गृहं गत्वा, वनं गन्तुं सुसज्जिता ।
 रामेण सह सर्वे वै, सुमित्राया गृहं ययुः ॥१३४॥
 वयं वन्दा महे देवि, वनं यातुं समुद्यताः ।
 आज्ञां प्रदेहि ह्ये मातः, ब्रजामश्चाद्य सत्वरम् ॥१३५॥
 वनं ब्रज सुधाराम, लक्ष्मणेन समन्वितः ।
 खेदञ्चास्ति समातीव, सीताया गमनाय वै ॥१३६॥
 परन्तु किन्तु कर्तव्यं, गातर्धातुदुरत्यया ।
 हेराम विमला कीर्तिः, भूयान्ते पृथिवी तले ॥१३७॥
 इत्याशिषं ततोलब्ध्वा, जग्मुस्ते पितरं प्रति ।
 प्रणम्य जनकं रामो, राजानं प्रत्युवाच सः ॥१३८॥
 आज्ञांप्रदेहि हे तात, गन्तुं मिच्छामि वै वनम् ।
 सीता सहचरी देवी, लक्ष्मणोऽपि च गच्छति ॥१३९॥
 संवुध्य विकलोराजा, हे राम इति चा ब्रवीत् ।
 किं करोमि क्व यास्यामि, न मे प्राणास्त्यजन्ति माम् ॥१४०॥
 विदीर्णं, हृदयं नाद्य, राम मे पापिनः कथम् ।
 मन्थरायास्तु दुष्टाया, मन्त्रेण नाशितं कुलम् ॥१४१॥
 सीतायाः सुकुमार्यास्तु, गमनं न सुशोभनम् ।
 सीता नेत्रस्य तारेवं, न्यवसत्तु गृहे सदा ॥१४२॥
 सा कथं कण्टकाकीर्णं, मार्गं गच्छति जानकी ।
 हे देवि त्वं तु मा गच्छ, दयं परि खिद्यते ॥१४३॥

परिशोचामि रूपं ते, सौकुमायं मनोहरम् ।
हे राम करुणाधार, मागच्छ त्वं तपोवनम् ॥१४४
दशा मे दुखदाघातः शोचनीया विगहिता ।
हे राम त्वां विनाहं तु, कथं जीवामि भूतले ॥१४५
इत्थं शोकातुरो राजा, सुमन्त्रं प्रत्युवाच ह ।
हे मन्त्रिवर हे धीमन्, त्वं सुकार्यं विदाम्बरः ॥१४६
आमयित्वासखेसर्वान्, दर्शयित्वा तपोवनम् ।
प्रत्यागच्छतु वै श्रीमान्, पञ्च षड्वा दिनानि च ॥१४७
हैं राम राम हे राम कथयित्वा नृपोत्तमः ।
मूर्खितोऽभूत्तदा राजा परंशोकाकुलोऽभवत् ॥१४८
लक्ष्मणोसौ तथा रामः, सीता जनक नन्दनी ।
गुरोश्च भवनं जग्मुस्ते प्रणेमुर्गुरुमुदा ॥१४९
प्रत्युवाच गुरुश्रेष्ठो, रामं सीतां सलक्ष्मणम् ।
लोके भवदृशां जन्म, सर्वपाप हरं ममम् ॥१५०
लोकानाञ्च हिताय, राज्ञसानां बधायतु ।
हिताय भो द्विजानाञ्च, धर्मं संस्थापनाय वै ॥१५१
कीर्तिस्ते पावनी राम, स्तूयते पृथिवी तले ।
पन्थानस्ते शुभाः सन्तु, भूयाद्वै विजयं तव ॥१५२
गुरोः शुभांशेषं प्राप्य, रघुवंशःशिरोमणिः ।
लक्ष्मणेन च जानक्या, वनं सार्धं समाययौ ॥१५३
सुमन्त्रो रथमानोय, प्रत्युवाच रघूत्तमम् ।
आरोहन्तु रथं तात, स्वर्णं सिंहासनान्वितम् ॥१५४
समारुह्य च ते सर्वे, वनं प्रति समागताः ।
गच्छतस्तु हि रामादीन्, नागरिकाः समुत्सुकाः ॥१५५
पुष्पाक्षतं गृहीत्वा ते, दशनाय समाययुः ।
सौमित्रि रावणं सीतां, दृष्ट्वा खेदं मुपाययुः ॥१५६
केचिद् राज्ञे ददुर्दोषम्, केचिद् भाग्याय संददुः ।
केचिद् ददुर्ज्ज कैंकेय्यै, मन्यरायै ददुस्तथा ॥१५७

इत्थं परस्परालापैः, खेदं मापुः सुनागराः ।
 कुर्वन्तश्च विषादंते, पुष्पं दूर्वासमाक्षिपन् ॥१५८
 प्रस्थिते च रमानाथे, ह्ययोभ्यायास्तु सज्जनाः ।
 रुरुदुर्विस्वरं शिष्य, रामदर्शनं लालसाः ॥१५९
 मार्गे याता जनाये च, ते तु संदर्शनोत्सुकाः ।
 तेषां सहचराः सर्वे, गमनाय समुद्यताः ॥१६०
 नागरिकाः सुमित्राणि, रामं हनुगतास्तदा ।
 प्रशशं सुत्रं ते मार्गे, ये रामं दर्शनोत्सुकाः ॥१६१

सप्तमो विरामः

प्रथमं तमसा वासमकरोत् रघुसत्तमः ।
 ते सुनद्या जलं पीत्वा, परं मोदमुपाययुः ॥१६२
 सुहृदो मम मां तात, न त्यजन्ति कदापि हि ।
 ततो ब्राह्मे मुहुर्त्ते वै, समुत्थाय प्रगम्यताम् ॥१६३
 प्रातरुत्थाय तान् त्यक्त्वा, सर्वे सह समागमन् ।
 पश्यन्तो नगरान्सर्वान्, सर्वे दूरं विनिंगताः ॥१६४
 संवयस्काः समुत्थाय, रामं सीताञ्च लक्ष्मणम् ।
 न ददशुञ्जते सर्वे, ह्यभूवन् विरहातुराः ॥१६५
 प्रत्याययुर्वयस्कास्त, विमुखाः सुहृदस्तथा ।
 सीता रामौ हि शोचन्तः, साक्षेत् विरहान्विताः ॥१६६
 केचिच्च न्यवसन्तत्र, रामागमनकाक्षया ।
 संपाद्य जीविकां तत्र, सर्वे ते खिन्नमानसाः ॥१६७
 सचित्रानुज सीताभिः, सार्धं रामं समागतम् ।
 येऽपश्यन् ते व्यनिन्दन्वै, कार्यकारणहेतवे ॥१६८
 सुकुमारौ कुमारौ द्वौ, सीतां जनकनन्दनीम् ।
 संहृष्य खेदसंपन्नाः, सर्वे नागरिका जनाः ॥१६९

नृपाय सुजनाः सर्वे, ददुर्दोषं निरन्तरम् ।
 कथं पिता कथं माता, याभ्यां पुत्रौ विवासितौ ॥१७०॥
 सुहर्म्याणि विचित्राणि, रामः सीता च लक्ष्मणः ।
 वनानाञ्च सुशोभां वै, पश्यन्त स्ते विनिर्ययुः ॥१७१॥
 रम्यं मनोहरं दिव्यं, शृङ्गवेरपुरं सदा ।
 रामादिसाहताः सर्वे, ह्याजग्मुस्तदनन्तरम् ॥१७२॥
 गङ्गाया दक्षिणे तीरे, नगरञ्चास्ति सुन्दरम् ।
 तत्रन्युवास रामोसौ, ससीता सचिवानुजैः ॥१७३॥
 श्रीराम मागतं श्रुत्वा, हर्षनिर्भर मानसः ।
 कन्द मूल फलं नीत्वा, गुहराजः समागतः ॥१७४॥
 मिलित्वा बन्धवाः सर्वे, राज्ञा सार्धं समाययुः ।
 फल पुष्पाणि संगृह्य, दर्शनाय समुत्सुकाः ॥१७५॥
 सबान्धवास्तु संदश्य, रामं पदम निभेक्षणम् ।
 प्रणमुर्दण्ड वत्सर्वे, तेहर्षोत्फुल्ल लोचनाः ॥१७६॥
 उपायनं ददौ प्रेम्णा, परा भक्ति युतो गुहाः ।
 विशिष्टञ्च फलं मूलं, श्री रामाय महात्मने ॥१७७॥
 वयं निष्किञ्चना देव, क्षुद्रागिरिवने चराः ।
 न जानीम भक्तिं वै, किमपि स्वागतं प्रभो ॥१७८॥
 हे भगवन् किमर्थमत्रै, वनं प्रति समागतः ।
 किञ्चात्र कारणं विद्वन्, गुहाया स्वागतं मम ॥१७९॥
 सीतया सह रामोसौ, लक्ष्मणः सचिवोत्तमः ।
 भक्त्या च चखदुः सर्वे, प्रदत्ताश्च गुहोपदाम् ॥१८०॥
 फलान्यादीनि भुक्त्वा च, तदा तान् प्रशशंस सः ।
 गुह राजः सवन्धुवै, मुदा रामं सिसेविरे ॥१८१॥
 भक्तिं गुहस्य संवीक्ष्य, रामो हर्ष मुपागतः ।
 गुहराजं पर भक्तं, जगद रघुनन्दनः ॥१८२॥
 दत्तौ नृपेण सत्यत्वात्, कैकेइयाः कारणा द्वरौ ।
 भरताय ददौ राज्यं, मद्यं स वन वासनम् ॥१८३॥

नव पञ्च च वर्षाणि, विचरिष्यामि दण्डके ।
 स्थानं द्दयाभि सिद्धानां, मुनीनां योगिनां तथा ॥१८४
 सर्वे सह तदा रामो, गंगा पाप विमोचनम् ।
 प्राप्य हर्ष मुपालेभे, स्नानार्थं ते समागताः ॥१८५
 भागीरथि नमस्तुभ्यं, त्वमहं शरणं गतः ।
 इति रामो नमस्कृत्य, गंगा देवीं जगौ मुदा ॥१८६
 अध हारिणि हे देवि, जगत्कल्याण कारिणि ।
 भगीरथ प्रयत्नेन, प्रादुर्भूतासि शोभने ॥१८७
 आसीद् भगीरथो राजा, दानी मानी पराक्रमी ।
 शम्भोश्च वरदानेन, ह्यनीता पृथिवी तले ॥१८८
 त्वं वै पाप निवृत्त्यर्थं, माविर्भवसि भूतले ।
 निमला तव धारा वै, महा मोदकरो शुभा ॥१८९
 स्नानं कुर्वन्ति ये भक्त्या, तेषां त्वं तु विमुक्तिदा ।
 स्तुतिं कृत्वा प्रभू राम, स्तदा स्नानं चकार ह ॥१९०
 पार्थिवं पूजयित्वा सौ, प्रातः सन्ध्या मुपात ।
 स्नानं चक्रुश्चतेसर्वे, स्वासनं समुपाययुः ॥१९१
 हे लक्ष्मण समा गच्छ, वट क्षीरं समानय ।
 जटा बध्नामि चेदानीं, मुनीनां व्रत सा कर ॥१९२
 तदा तु लक्ष्मणः शीघ्रं, वटक्षीरं समानयत् ।
 दुग्धेन च जटां स्यामां, रामचन्द्रो हि लक्ष्मणः ॥१९३
 अवध्नीतां तदा क्षिप्रं, सुमन्त्रः खेद माप्नवान् ।
 हे राम निखिला धार, किं क्रियते त्वयाधुना ॥१९४
 हृदयं खिद्यते तात, किं जीवाम्य धुनैव हि ।
 नृपाज्ञया प्रभो राम, प्रत्यागन्तुं किमिच्छसि ॥ १९५
 जटानां बन्धनं दृष्ट्वा, शंका मे ऽतीव जायते ।
 स्वीकुरुस्व तु मे याञ्चां, गृहं प्रति निवर्तय ॥ १९६
 सचिवस्य वचः श्रुत्वा, रामो राजीव लोचनः ।
 जगाद् सचिवं श्रेष्ठं त्वं पितेव समादरः ॥ १९७

उच्चायुक्तोऽसि हे धीमन्, मम कार्यं विदांवरः ।

न प्रत्यागमनं युक्तं, मिति मे निश्चिता मतिः ॥ १६८

मान्योसि मे हि पूज्योसि, साकेतं प्रति गच्छ भोः ।

सत्यान्न चलितो राजा, कार्यं मे संभविष्यति ॥ १६९

इत्थं विमृश्य हे मन्त्रिन्, समागच्छ निकेतनम् ।

इत्यश्वास्य प्रभू रामो, मन्त्रिणं तं व्यमोचयत् ॥ २००

सुमन्त्रो रथ मानीय, विमनाःस्व पुरीं शुचा ।

हे राम संलप्य, रुदन्वै सचिवो गतः ॥ २०१

गंगा तरण कामो वै, गंगा तीर मुपागमत् ।

सर्वैः सह तदा श्रीमान्, रामः प्रोवाच केवटम् ॥ २०२

केवट स्त्वं सुविज्ञोसि, स्व नौकां तां समानय ।

गंगाञ्च तर्तुं मिच्छामि, पापघ्नीं शुभ कारिणीम् ॥ २०३

रामं समीप मागत्य, प्रणम्योवाचनाविकः ।

हे प्रभोत्वांविजानामि, मे ऽ पराधं क्षमस्व भोः ॥ २०४

न चानयामि नावं वै, शङ्केऽहं जाविकां कृते ।

किं प्रव्रवीसि हे प्राज्ञ, को हेतुश्चात्र नाविक ॥ २०५

जगाद केवटो रामं, कारणं शृणु राघव ।

त्वत् पाद रजसो नाथ, शिला नारी भवेद यदि ॥ २०६

तत् किं दारुमयी नौका, किं नारी न भविष्यति ।

शृणुस्व कारणं राम, तद्वयाद्वै न चानये ॥ २०७

पादाम्बुजौ हि वै चिज्यौ, क्षालयामि यदा न वै ।

नारोहयामि रामत्वां, जीविका मेऽप गच्छति ॥ २०८

पादौ प्रक्षालनात्पूर्वं, तारये न कदापि च ।

तत् स्वीकुरु ममा काङ्क्षां, पावनीं सुमनोहराम् ॥ २०९

नाविकस्य वचः श्रुत्वा, सुधा प्रोतं महत्तमम् ।

स्वीचकार हि तद्वयाञ्चां, कृपालू रघुनन्दनः ॥ २१०

प्रक्षाल्य च ततः पादौ, नाविकश्च महत्तमः ।

स्व पापौघ हरं पुण्यम्, मूर्ध्नि संमृज्य तवजलम् ॥ २११

सर्वानारोहयित्वा च, गंगा पारमवा तरत् ।
 गङ्गा मुल्लंघ्य रामोसौ, तं भत्कं प्रति हर्षितः ॥ २१२
 केवटाय सुभक्ताय, दत्तवान् पारितोषिकम् ।
 पारिश्रमं न गृह्णामि, त्वत्तः कमल लोचन ॥ २१३
 स्वजनेभ्यो न गृह्णीयु, वर्त्ति परिजनास्तथा ।
 तथैव राम गृह्णामि, श्रम मूल्यं कदापिन ॥ २१४
 उत्तारयामि देवत्वां, गङ्गा घट्टे समागतम् ।
 तारयिष्यसि मां देव, भवत् घट्टे समागतम् ॥ २१५
 भक्तिं मुक्तिश्च मे देहि, त्वामहं शरणं गतः ।
 स्तुतिं रामस्य संपाद्य, नाविकः स्वगृहं ययौ ॥ २१६
 गुहं निषाद राजञ्च, प्रत्यावर्तत वै मुदा ।
 ततः प्रहर्षितो, रामो गुहा भिलषितं ददौ २१७
 स्नानं कृत्वासु गङ्गायां, सीता हर्ष मुपागता ।
 स्तुतिं चकार विधिना, गङ्गायास्तु हि जानकी ॥ २१८
 भागीरथि नमस्तुभ्यं, त्वं सदा मोक्ष दायिनी ।
 सद्यः पाप हरा देवी, त्वं कल्याण प्रदा सदा ॥ २१९
 पश्यन्ति ये च मातस्त्वां विमुखा न भवन्ति ते ।
 स्नानं कुर्वन्ति ये लोकाः, ते सुखिनो भवन्ति वै ॥ २२०
 प्रभू रामोमम स्वामी, लक्ष्मणेन समन्वितः ।
 सर्वे ते कुशलाः सन्तु, शुभाशिषं प्रदेहि मां ॥ २२१
 वलि पूजां प्रदास्यामि, स्व प्रत्यागमनाय हि ।
 श्री रामोद्विज मुख्येभ्यः, ददौ च दक्षिणां तदा ॥ २२२

अष्टमो विराम

कृपा पात्रं गुह कृत्वा, रामचन्द्रा महाप्रभुः ।
 तीर्थ राजं नमस्कृत्य, स्तुतिं समुपचक्रमे ॥ २२३

वर्धतां तीर्थं राजोऽसौ, भक्ति मुक्ति फल प्रदः ।

यस्य वसति सान्निध्ये, गङ्गा त्रिपथ गर्गिणी ॥२२४

यमुनायास्तु कृष्णत्वं, भागोरथ्या स्तु शुभ्रता ।

उभयोः रम्य संयोग, स्तीर्थं राजे विराजते ॥२२५

द्योतते वन राजीव, भासते पृथिवी तले ।

विघ्नानां शीघ्र शान्त्यर्थ, वट वृक्षः सुशोभते ॥२२६

त्वं तु विद्या प्रदो देव, त्वं तु ज्ञान प्रदः सदा ।

त्वं तु पाप हरस्तीर्थः, स्तीर्थं राज नमोस्तुते ॥२२७

त्वं राजा सर्व तीर्थानां, त्वमेव जगतः पिता ।

यज्ञानां कारणं त्वं तु, सदा मोक्ष प्रदोभव ॥२२८

ततो रामादयः सर्वे, भरद्वाजाश्रमं शुभम् ।

अगच्छन् प्रेम संगता, दर्शनाय मुनिं जनाः ॥२२९

वन्यं तत्राश्रमं गत्वा, प्रणमुस्ते मुनिमुदा ।

मुनिर्जगाद तं राम, भास्यता मासने शुभे ॥२३०

हे प्रभा मां कृपां कृत्वा, त्वया स्वागमनं कृतम् ।

गृहाण स्वागतं राम, सीतानुज समन्वितः २३१

अभ्युत्थानाय धर्मस्य, जगता मुदयाय च ।

राक्षसानां विनाशाय, सर्वेषां विभवाय च ॥२३२

आविर्भूतोसि हे राम, सीता लक्ष्मण संयुतः ।

त्वमीशः सर्व देवानां, जगत्कल्याण कारकः ॥२३३

त्वं धाता त्वं च विष्णुर्वै, रामोऽसि त्वं महेश्वरः ।

महर्षेः स्वागतं प्राप्य, रामो राजीव लोचनः ॥२३४

जगाद स्वागतं वाक्यं, दिव्य दृष्टिं मुनिं प्रति ।

धीमतां दर्शनं योगिन्, दुर्लभं जगती तले ॥२३५

भवतां सु तपस्वीनां, कृपास्ति चेन्ममोपरि ।

तर्हि मे सफलं जन्म, न कदापि पराजयः ॥२३६

आज्ञां प्रदेहि योगर्षे, गन्तु मिच्छामि वै वनम् ।

हे राम जगदाधार, करुणा कर वत्सल ॥२३७

तेपन्थानः शुभाः सन्तु, गच्छ राम यथा सुखम् ।
 समागच्छन्तु हे शिष्या, वाल्मीकेराश्रमं प्रति ॥२३८
 मुने राज्ञां तु सम्प्राप्य, जग्मुस्ते यमुनां तदा ।
 यमुनायाः शुभं स्नानं, चक्रुः राम मुहूर्जनाः । २३९
 स्नानं कृत्वा सुधी रामो, लक्ष्मणो जानकी युतः ।
 अति प्रहृषितो रामः, कालिन्ध्याः स्तवनं जगौ ॥२४०
 हे कालिन्दि महमाये, कामदे वरदे शुभे ।
 अथ हारिण हे देव, शुभदे ज्ञान दायिनि ॥२४१
 मह्यं मनोरथं देहि, त्वंसदा पुण्य कारिणी ।
 दर्शनाय समयान्ति ये च त्वां परमेश्वरि ॥२४२
 प्राप्नुवन्ति हि ते मुक्तिं, त्वामहं शरणं गतः ।
 रामस्तां यमुनां स्तुत्वा, वाल्मीकेराश्रमं गतः ॥२४३
 उद्यानानि विचित्राणि, प्लक्षाश्वत्थ तरुनिवै ।
 ग्राम खर्वट खेटाञ्ज, विविधानि वनानि च ॥२४४
 शिलोच्चानि ह्यरण्यानि, प्रकाराणि दुर्माणि च ।
 आश्रमं जम्बू तमालानि, दृष्ट्वा सर्वे प्रमोदिताः ॥२४५
 कति शिष्या महर्षेस्ते ये च मार्गं प्रदर्शकाः ।
 आश्रमं प्राप्य वाल्मीकेः श्री रामं जगदुस्तदा ॥२४६
 आश्रमं दृश्यते नय, वाल्मीकेश च स त्मनः ।
 ते सर्वे तत्र गत्वा वै, शिष्याञ्ज जगदुन्निम् ॥२४७
 सीताञ्च लक्ष्मणं रामं, श्रुत्वा समागतं ततः ।
 समायातं प्रभुं मत्वा, मुनिर्हर्षं मुपागमत् ॥२४८
 रामदिश्रमुखाः पूज्याः, प्रणोमुर्दण्डवत्तदा ।
 मुनिः शुभांशं दत्वा, स्वागतञ्ज चकार वै ॥२४९
 वरासने प्रतिष्ठाप्य, रामचन्द्र जगद्गुरुम् ।
 उवाच च मुनि श्रेष्ठः, कन्द मूलफलं ददौ ॥२५०
 हे राम मम सौभाग्यं, यद् भवान् स्वयमागतः ।
 मूकन्द ल फलं भुञ्जत, सपर्यारं गृहाण भोः ॥२५१

कथं ब्रवीसि हें विद्वन् , पूज्योसि त्वं महामुने ।

योगिनां त्वद्विधानां वै, दर्शनञ्चाति दुर्लभम् ॥२५२

अद्य मे सफलं जन्म, वर्तते सफला क्रिया ।

भवतां दर्शनादेव, मुक्तो जातः सदा जनः ॥२५३

इत्युक्त्वा च फलं भुक्त्वा, विरराम नरोत्तमः ।

वाल्मीकिः प्राह रामं वै, हे राम पुरुषोत्तम ॥२५४

प्रादुर्भूताऽसि हे राम, जगत्कल्याण हेतवे ।

साक्षाद् विष्णुश्च रामत्वं, प्रादुर्भवसि भूतले ॥२५५

माया रूपासती सोता ब्रह्म रूपो हि राघवः ।

ताभ्यामुत्पन्नं विज्ञानं, तव रूपश्चास्ति लक्ष्मणः ॥२५६

स्वत्मानन्द करं रूपं, सदा मोद करं यशः ।

सदा सुख करं ध्यानं, श्री रामस्य महात्मनः ॥२५७

विद्यावन्तो वदान्याये, यज्ञ शीलास्तपस्विनः ।

सदाचार रता ये तु, तेषां हृदि च तिष्ठसि ॥२५८

पर विघ्नं न कुर्वन्ति, पर स्वार्थं चरन्ति ये ।

आर्ते दयाञ्च कुर्वन्ति, तेषां हृदि च तिष्ठसि ॥२५९

विद्या विनय सम्पन्ने, तथा भक्ति युते जने ।

श्रद्धाध्यान समायुक्ते, भवत्प्रीतिर्निरन्तरम् ॥२६०

सदा मोद करी विद्या, सदा शुद्ध करं तपः ।

सदा शान्ति करा भक्तिः, सदा ध्यानं विमोक्षदम् ॥२६१

इति स्तुतिं तु कृत्वा वै, मुनिर्हर्षमुपागतः ।

सुप्रसन्नस्तदा रामो, वाल्मीकिञ्च जगाद वै ॥२६२

हे मुने ब्रूः मागं वै; निवासं सुखदं तथा ।

निवासाय परं योग्यं, शान्तिदञ्च शुभाश्रमम् ॥२६३

हृदिस्थि स्त्वं तु सर्वेषां, विष्णुः सर्व गुहाशयः ।

ब्रूते भवान् कथं पूज्य, प्राकृतः पुरुषो यथा ॥२६४

वक्ष्ये तथापि हे नाथ, चित्रकूटे शुभाश्रमे ।

निवासं कुरु हे राम, रमणीये मनोहरे ॥२६५

गङ्गाया रूपधारा च, मन्दाकिनी विराजते ।
 निर्मला शुभदा प्रोक्ता, पापघ्नी यत्र शोभते ॥२६६
 गम्यतां हे रमानाथ, कार्यं शुभकरं भवेत् ।
 शिष्या गच्छत यूयं वै, मार्गं निर्दर्शनाय च ॥२६७
 चित्रकूटं तुसंप्राप्तं, दृष्ट्वा रामोऽतिहर्षितः ।
 प्रफुल्ल वदनश्चासीत्, सीतया लक्ष्मणेन च ॥२६८
 मन्दाकिन्यास्तटे चैव, दृष्ट्वावै सुन्दरीं छटां ।
 परं रम्यं वनं दृष्ट्वा, लक्ष्मणं निदिदेशसः ॥२६९
 सौमित्रे प्रिय शीघ्रं त्वं, पर्णकुटीं विनिर्मय ।
 आहरस्व फलं पुष्पं, गङ्गाया पूजनाय च ॥२७०
 विरच्य पर्णशालां वै, पुष्पाणि चानय तदा ।
 गङ्गायाः पूजनं चक्रुः कुलदेवं तथैव च ॥२७१
 श्रीराघवं समायातम्, श्रुत्वा सर्वे प्रमोदिताः ।
 किरातास्तु समागत्य, फलं पुष्पै रपूजयन् ॥२७२
 मनोहरं वनं दृष्ट्वा, नाना वृक्ष समन्वितम् ।
 पक्षी मृग गणाकीर्णम्, शुक कोकिल कूजितम् ॥२७३
 सुसौन्दर्यं वनस्थल्याः, सा सीता मुदिता भवत् ।
 रामश्च लक्ष्मणश्चैव, वनं दृष्ट्वा प्रमोदितौ ॥२७४
 पशु पक्षिगणा यूथा, स्तान् विलोक्य प्रहर्षिताः ।
 हर्षेणि न्यवसन् सर्वे, चित्रकूटं शुभाश्रमम् ॥२७५

नवमो विरामः

अथ श्रैष्ठः सुमन्त्रो वै, स्वायोध्यां विमना गतः ।
 पुरीं प्रविश्य राजानं, दृष्ट्वा विरह पीडितम् ॥२७६

सः सम्बोध्य प्रबोधेन, नमश्चकार सादरम् ।
 रामं विना प्रियं पुत्रं, सीताञ्च लक्ष्मणं विना ॥२७७
 एकाक्येव समायातो, रामः किन्नागतो वद ।
 पालनायदिसत्यं ते, रामो नैव समागतः ॥२७८
 रामादीनां नमस्कारं, गृहाण कृपया प्रभो ।
 रामं विना न जीवामि, प्राणामे मांत्यं जन्तिवै ॥२७९
 अवश्यमेव मे मृत्युः, कौशल्ये संभविष्यति ।
 प्राप्तव्यं नितरामेव, कृतकर्म शुभाशुभम् ॥२८०
 एकदा शृणु कौशल्ये, मृगयार्थं समागतः ।
 सरयू प्रान्तरे शब्दं, श्रुत्वा जातो ऽस्मि हर्षितः ॥२८१
 शब्दं वेधत्वरंवाणं, तस्मिन्नेवजघानह ।
 संश्रुत्य पौरुषीवाणीं, तत्र स्थानं समागमम् ॥२८२
 गत्वा च पुरुषं दृष्ट्वा, परं खेदं मुपागमम् ।
 तं जगाद तदाहं च, कोजनस्त्वमिहा गतः ॥२८३
 नाम्नास्मि श्रवणः प्राज्ञ, अन्ध्याश्च शन्तनोः सुतः ।
 उभौ पिपासितौ दृष्ट्वा, जलार्थं त्वहं मागतः ॥२८४
 निःसरन्तिहिमे प्राणा, जलञ्च नय सुव्रत ।
 पितृभ्याञ्च जलं देहि, ममापि मरणं वद ॥२८५
 गृहीत्वाहं जलं देवि, पित्रोश्च सविधे गतः ।
 जलं पिव महाप्राज्ञ, प्रत्युवाच तदात्वहम् ॥२८६
 पुत्रो मे वै भवान्नास्ति, दम्पतिश्च जगाद माम् ।
 अहं दशरथो राजा, योध्यायास्तु समागतः ॥२८७
 सरय्वां गङ्गडा शब्दं, श्रुत्वाहि वाण मत्यजम् ।
 तस्माद् वाणेन विद्धोसौ, श्रवणोव्यमितोः भवत् ॥२८८
 पुत्रस्य ते शरीरन्तु, वाणं वै विचकर्ष च ।
 तस्मात्तव मृतः पुत्रः, तत्तापेन च दुःखितः ॥२८९
 जगाद तौ च कौशल्ये, दीनौ प्रति समाययौ ।
 भिवतां सु जलं प्राञ्चौ, क्षमेतां कर्म निन्दितम् ॥२९०

पुत्र शोकेन हे राजन्, यथा प्राणा स्त्यजन्ति माम् ।
 तथैव पुत्र शोकेन, मृत्युं त्वमपि यास्यसि ॥२६१॥
 भौ शापं प्रदत्वा मां; प्राणान् त्यजतां तदा ।
 इति शापं स्मरन्नित्य, मद्य प्राणान् त्यजाम्यहम् ॥२६२॥
 इत्युक्त्वा मूर्च्छितो राजा, धरण्यां निपपात सः ।
 पुनः संज्ञां समादाय, शोकावेगेन पीडितः ॥२६३॥
 मणिं बिना यथा व्यालो, मीनो यथा जलं बिना ।
 रामं बिना तथा राजा व्याकुलत्वमवाप सः ॥२६४॥
 हे राम राम हे राम, सीता राम च लक्ष्मण ।
 इतिब्रुवन्तदा राजा, सद्यो मृत्युमवापहि ॥२६५॥
 कौशल्या माह्वी राज्ञ, स्तथान्तः पुरिकाः स्त्रियः ।
 रुरुदुर्विस्वरं शिष्य, नृपस्य च दिवं गते ॥२६६॥
 कौशल्याया समाहूतः, वशिष्ठः सचिवेन वै ।
 सद्येस्तत्र समागत्य, मोक्षशान समन्वितम् ॥२६७॥
 श्रावया मास विज्ञानं, महाशोक निवृत्तये ।
 राव्यकायं सुरक्षस्व, सुमन्त्र सचिवोत्तम् ॥२६८॥
 तैल द्रोण्यां स्तुसन्थाप्य, राज्ञः शव कलेवरम् ।
 मन्त्रिवर्यं सुमन्त्रस्त्वं, श्रीभरतं समाह्वय ॥२६९॥
 न कथयन्तु दूतास्ते, मरणं तत्र भूपतेः ।
 दूतांश्च प्रेषयामास, कुशलान् कार्यं तत्परान् ॥२७०॥
 गन्तारो विज्ञ दूतास्ते, केकयं नगरं गतः ।
 समागतान्तु दूतान्वै, जगाद भरत स्तदा ॥२७१॥
 कुशलं राजधान्यां नः, कथयध्वं सुचारकाः ।
 वन्दाभहे युवां देवौ, चाहूतौ गुरुणात्वरम् ॥२७२॥
 शेषञ्च कुशलंश्चास्ति, सत्वरं चल सुव्रत ।
 राजधानीं समायातौ, भरतः शत्रु सूदनः ॥२७३॥
 जगाद भरतो दूतान्, विक्षिप्त मनसस्तथा ।
 नजाने कारणं किन्तु, कम्पते हृदयो मम ॥२७४॥

न शान्तिरस्ति मे चित्ते, व्यग्रता हृदि विद्यते ।

मार्गे सुन्दरता नास्ति, वामः स्फुरति मे भुजः ॥३०५

रथेन वायु वेगेन, नगरीं समुपस्थितौ ।

किमत्र कारणं दूता, नगरी न सुशोभते ॥३०६

मांगलिकानि वाद्यानि, न वाद्यन्ते हि कुत्रचित् ।

धूम्राम्बरं नगर्यां वै, दृश्यते हि समन्ततः ॥३०७

कल्पनां क्रियमाणस्तु, चागतः प्रतिमा गृहम् ।

प्रतिमा गृह मागत्य, प्रतिमां तत्र दृष्ट्वा ॥३०८

कर्तारो दर्शया मासुः, शोभनां प्रतिमां रघोः ।

रघोः पिता दिलीपश्च, पितामहमजं तथा ॥३०९

भरतश्चाग्रतो गत्वा, पितुर्मूर्तिं ददर्श वै ।

भरतः प्रतिमां दृष्ट्वा, धरण्याञ्च पशत सः ॥३१०

हे दूताः कारणं किंच, पितुर्मूर्तिः समागता ।

श्रूयतां तर्हिते देव, पिता स्वर्गं समाययौ ॥३११

तदा तु रोदनं कृत्वा, भरतो विललाप ह ।

विलयंतं हि शत्रुघ्नः, समाधानं तदाकरोत् ॥३१२

स्थापयित्वा रथे दूताः, कैकेय्या भवनं गताः ।

समागतं सुतं दृष्ट्वा, कैकेयी सा प्रहर्षिता ॥३१३

स्वमात्तरं नमस्कृत्य, भरतस्तां जगाद वै ।

किं मातः कारणञ्चात्र, रामाय वन वासनम् ॥३१४

चक्रवर्ती नरेशश्च, किं मृत्युं समवाप सः ।

सर्वां वार्तां समाचक्ष्व, विधाता किं विधास्यति ॥३१५

भरतस्य हि पृष्टे च, कैकेयी तमुवाच सा ।

राज्ञा दत्तौ बरौ द्वौ च, संग्रामस्य च मूर्धनि ॥३१६

पूर्वेण याचितं तुभ्यं, सुराज्यं शुभ कामदम् ।

परेण याचि पुत्र, रामाय वन वासनम् ॥३१७

इतिसंश्रुत्य रामोऽसौ, वन वासं समागतः ।

तस्मान्नृपस्तु शोकेन, विना रामं मृतस्तदा ॥३१८

मातस्त्वया कृतं कर्यं, निन्दनीयं सदैव हि ।
 गृह भेदञ्च दुर्वृत्तं, कुल नाश करं सदा ॥३१६
 कुल घातिनि रेचण्डि, त्वं रिंघा धरणी तले ।
 दुष्टेऽहं न सुखं काञ्चे, न राज्यं चण्डिघातिनि । ३२०
 योग्यं योग्याय दातव्यं, मितिनीत्यान यान्ति ये ।
 येहि स्वार्थं समीहन्ते, निन्दनीयास्तु भूतले ॥३२१
 वैपरीत्यं "नु ते बुद्ध्या, धिक् कुर्वन्ति च सज्जनाः ।
 आत्मजोऽस्मि" भव त्यागै, चिन्ता मे च गरीयसी ३२२ ॥
 प्रत्यायास्यति रामोसौ, कथं चिन्तावलीयसी ।
 भवत्या दोष बुद्ध्या हि, पिता मे मरणं गतः ॥३२३
 विमूढे त्वं न जानासि, रामं हि पुरुषोत्तमम् ।
 रामस्य किं करोऽहं वै, कथं राज्यासनं वरम् ॥३२४
 अन्धी भूता सदास्वार्थे, तन्न जानासि गौरवम् ।
 व्यमोहयन्तु मूढत्वां, मन्थरा गृह भेदिनी ॥३२५
 इत्युक्त्वा सानुजोवीरः, कौशल्या भवनं गतः ।
 मातरं तु नमस्कृत्य, भरतो निर्जगाद ताम् ॥३२६
 हे मातः शृणु मे वाचं, मात्रा मेहि कृतञ्च यत् ।
 तद्विग्राहं च निद्यं वै, प्रशंसन्ति न सज्जनाः ॥३२७
 तत्कारणात्तु हे मातः सर्वापत्तिं ममागता ।
 पितुर्वै मरणञ्चैव, रामस्य वनवास नम् ॥३२८
 कुलघात करा देवि, मन्थरा च सदा भवत् ।
 भेदनीतिं विजानाति, वाक् चतुरा च मन्थरा । ३२९
 मातर्मसंमतिर्नास्ति, साद्यस्ति वै महेश्वरः ।
 गो विप्र गुरु नारीणां, घातकानाञ्च यागतिः ॥३३०
 सा मे गतिश्च भूयाद्वै, यदि मेऽनु मतिस्तदा ।
 मातरवचेति विश्वस्य, भरतो विरराम ह ॥३३१
 तदा शुभाशिषं दत्वा, कौशल्या तं जगाद हि ।
 भवितव्यं भवत्येव, कोऽपि दोषो नवर्तते ॥३३२

हे पुत्र सत्यवादी त्वं, निष्कलंको जनप्रियः ।
 रामं प्रत्यति भक्तिस्ते, सदा मे निश्चिता मतिः ॥३३३
 सुमित्रां च नमश्चक्रे, भरतोशत्रुसूदनः ।
 शुभाशिषं तदा दत्त्वा, सुमित्रा प्रशशंसह ॥३३४

दशमो विरामः

भरतस्तु तदा शिष्य, गुरोर्भवन माययौ ।
 प्रण नाम गुरुं श्रेष्ठं, पितुर्मरण वेदनः ॥३३५
 श्री भरतं समुत्थाप्य, वशिष्ठो बुद्धि सत्तमः ।
 गाढ मालिङ्ग्य सुप्रेम्णा, सिसिञ्च नेत्र जैर्जलैः ॥३३६
 महाशोकं निरासाय, भरतस्य महा मुनिः ।
 सुस्थिरै विविधैर्ज्ञानैः, प्रोवाच भरतोत्तमम् ॥३३७
 अशोच्यं ते पिता वत्स, सदाचारी धृत व्रतः ।
 आसीदयालु धर्मात्मा, सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥३३८
 परोपकार संलग्नो, मा शोच्यं हि कदापि च ।
 शोचनीयस्तु हे प्राज्ञ, विद्याहीनो नरः सदा ॥३३९
 परदार रतो यस्तु, दया सत्य वहिष्कृतः ।
 परोपकारं संरुद्धो, यस्तु विश्वास घातकः ॥३४०
 ब्राह्मणो वेदहीनो यो, रक्षाहीनो महीक्षितः ।
 भक्ति हीनो यथा वैश्यः, शूद्रः सेवा रतो न यः ॥३४१
 भ्रष्टाचारी च मन्त्रीयो, लोभी मोही यथा नृपः ।
 मण्डलाध्यक्ष लोभीयो, सर्वे वै शोक योग्य हि ॥३४२
 पतिद्रोह करा नारी, राष्ट्र द्रोह करो जनः ।
 स्वराष्ट्रे योन रक्तः स्यात्, स्वधर्मेण वहिष्कृतः ॥३४३
 यो गुरोर्नैव भक्तोस्ति, वंशघात करो जनः ।
 उपर्युक्तं सदा शोच्यं, माशोच्यमस्तिते पिता ॥३४४

और्ध्वं दैहिक संस्कारं, पितुर्वैधं कुरुष्वहि ।

राज्यासनं मलंकृत्य, राष्ट्रं भारं बहस्व भोः ॥३४३॥

हे महर्षे तवानुज्ञा, सदा मान्या विशेषतः ।

रामस्य क्रिकरोऽहंवै, कथं राज्यासनं वरम् ॥३४६॥

पितुः सविधिं संस्कारं, कारं यस्व तपोनिधे ।

आगमनाय रामाय, चित्रकूटं शुभाश्रमम् ॥३४७॥

गमनं विहितं मन्ये, मन्त्रयस्य महामुने ।

न शान्तिं न सुखं लेभे, श्रीरामागमनं विना ॥३४८॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा, जगाद मुनिं सत्तमः ।

परावृत्य हितं रामं, राज्यं भारं प्रदेहि भोः ॥३४९॥

हे तात त्वत् समो बन्धु, न भूतो न भविष्यति ।

हे वत्स तव सिद्धान्तं, योग्यं हितं करं सदा ॥३५०॥

शीघ्रं मेव हि गच्छेम, चित्रकूटं वनं शुभम् ।

वशिष्ठो मुदितो भूत्वा, शुभाज्ञां प्रददौ पुनः ॥३५१॥

संस्काराय पितुर्देव, शीघ्रं ब्रज महातप ।

भरतस्य वचः श्रुत्वा, राजहर्म्यं समागतः ॥३५२॥

सानुजो भरतश्चैव, वशिष्ठः सचिवोत्तमाः ।

तथा नागरिकाः सर्वे, शवस्थानं समाययुः ॥३५३॥

वैदिकैर्वेदमन्त्रैश्च, घण्टा शङ्ख समन्वितैः ।

शवयात्रां समारम्भा, सरयूतीरं मागता ॥३५४॥

भरतो वेदमन्त्रैश्च, ह्यग्निदानं तदा करोत् ।

तिलदानं जनाः सर्वे, समाचक्रुः शुचान्विताः ॥३५५॥

सर्वं विधिं विधानेन, कर्मकाण्डं तथा करोत् ।

दानं दत्त्वा द्विजातिभ्यो, भोजया मासं वाडवान् ॥३५६॥

महाराज्यो वशिष्ठश्च, भरतश्शत्रुसूदनः ।

चित्रकूटं समाजग्मुः, रामदर्शनं लालसाः ॥३५७॥

सर्वे प्रजा जनाः श्रेष्ठाः, मुसेनायास्व नायकाः ।

शुभाश्रमं समाजग्मुः, विभागो सचिवोत्तमाः ॥३५८॥

तां सेना माता तां दृष्ट्वा, गुह्यराजः समागतः ।
 सर्वान् प्रणम्य गत्वा सौ, भरतं प्रत्युवाच च ॥३५६
 अभि गच्छसि हे प्राज्ञ, किन्तुरामं समुद्यतः ।
 ब्रूहि तत्कारणं नाथ, किम्वा तु दर्शनाय वै ॥३६०
 गुह्यस्त्वं वद संवादं, रामस्य मिलनं कदा ।
 दर्शनायानुगच्छामि, तं प्रत्या गमनाय च ॥३६१
 हे बन्धा चात्र रामो वै, निवासम करोत्तदा ।
 वदच्छाया स्थलं दृष्ट्वा, तं प्रणम्य ददर्श सः ॥३६२
 तदा गंगां नमस्कृत्य, तथा स्नानं विधाय च ।
 ददौ दानं द्विजातिभ्यो, सर्वेषां वृत्ति हेतवे ॥३६३
 ततः सर्वे समाजग्मु, भरद्वाजाश्रमं शिवम् ।
 ससेनाप्रागतं दृष्ट्वा, भरतं शत्रु सूदनम् ॥३६४
 भरतस्य तथा भावं, विज्ञातुं मुनि सत्तमः ।
 स्वागतस्य मि षेणैव, सभा स्थानं व्यनिर्मयत् ॥३६५
 भरतोऽग्रेहि गत्वा च, भरद्वाजं ननाम सः ।
 तं वशिष्ठा दयः सर्वे, नमञ्चक्रुर्मुदान्विताः ॥३६६
 सर्वान्नि वास या मास, मुनिः सद्गानि शोभने ।
 राज्यासनं सभा स्थाने, निर्दिश्य भरतं प्रति ॥३६७
 आस्यतां हे महाभाग, मुनिजगाद सादरम् ।
 राजासनं तु दृष्ट्वासौ, भरतः प्राह तं मुनिम् ॥३६८
 इदं रामासनं देव, नोप युक्तं हि मे मतः ।
 अश्रु पूर्णैस्तदा नेत्रैः, हृदि रामं व्यचिन्तयत् ॥३६९
 भरतस्त नमस्कृत्य, सुपुष्पाणि समर्पयत् ।
 शास्त्र वेत्ता तथा धीरो, मन्त्रिणा मासनं ययौ ॥३७०
 तस्य भावं तथा लोक्य, मुनिर्ष मुपागतः ।
 यथोचितं तदातिथ्यं, सर्वेषां विदधे मुनिः ॥३७१
 त्यादृशः पुम्षो लोके, श्रूयते न च दृश्यते ।
 यतो नास्तीह राज्ञेच्छा, न चास्ति सुख कामना ॥३७२

हे महा भाग धन्योसि, चिरं जीव गुणाग्रणीः ।
 कीर्तिस्ते विमला लोके, प्रसरेत् सर्व दैव हि ॥३७९
 संमाननीय योगर्षे, त्वंतु धन्योसि हे प्रभो ।
 रामस्येव सदाचारं, भरते चापि विद्यते ॥३७४
 यत्तु ह्येतादृशं शिष्यं, प्रशंस्यं प्राप्त वानसि ।
 कोशलेन्द्रस्य तुल्योवै, न वात्सल्यं बहुज्ञता ॥३७५
 रामस्येव न मर्यादा, सीतेव नहि शीलता ।
 भरतस्य समानो हि, न भ्रातृत्वंसहिष्णुता ॥३७६
 न तपो लक्ष्मणस्येव, ब्रह्मचर्यं च विद्यते ।
 शत्रुघ्नस्थ समानोहि, नास्ति चैवानुशासनम् ॥३७७
 हे वशिष्ठ महाप्राज्ञ, साक्षाद् विष्णुः परात्परः ।
 स्वं विभज्य चतुर्धावै, प्रादुर्भूतोस्ति भूतले ॥३७८
 भरद्वाज वचः श्रुत्वा, वशिष्ठ स्तमुवाच ह ।
 सूर्यवंशेवरे प्राज्ञ विरिञ्चे राज्ञया मुने ॥३७९
 जर्नायष्याति विष्णुर्वै, पौरोहित्यं समाचर ।
 निन्दता सापि वृत्तिर्वै, श्रीराम जन्म काङ्क्षया ॥३८०
 स्वोक्तोऽस्मि तदा प्राज्ञ, पितुरग्रे महामुने ।
 धन्योह्यनु गृहीतोस्मि, राम जन्मात्तु मानदा ॥३८१
 भूमे भारव ताराय, स रामोवै प्रजायते ।
 राक्षसानां विनाशाय, धर्मस्याभ्युदयाय च ॥३८२
 परस्परञ्च संमन्य, प्रहर्षमुप जग्मतुः ।
 मुने राज्ञां स संप्राप्य, गमनाय मतिं दधे ॥३८३

एकादशो विरामः

उच्चैः शैलानि रम्याणि, सुन्दराणि वनानि च ।
 ग्राम खवेट खेटाँक्ष, पश्यन्तो निर्ययुस्तदा ॥३८४

सेनाया वृत्तिता रेणु, राकाशमारु रोह च ।
 दृष्ट्वा नागरिकाः सर्वे, लक्ष्मणाञ्चब्रुवन्तदा ॥३८५
 हे लक्ष्मण समायाति, सुसेना भरतस्य च ।
 तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणो वीरो, जगाद राम सन्निधौ ३८६
 सेनां सुसज्जितां नीत्वा, चायाति भरतः प्रभो ।
 स सैन्यं नाशयिष्यामि, पादयोयंदिते कृपा ॥३८७
 काचन्ती संकलां सक्तां, कैकेयी हठवादिनी ।
 पुत्राय राज्य भारं सा, सुसमृद्धां निरापदाम् ॥३८८
 हत्वा निर्वासितान्स्मान्, निर्भयं दातुमिच्छति ।
 पुत्रेण सह सेनाभिः, प्रति युद्धाय चागता ॥३८९
 सुराज्यं सुदृढं काङ्क्षे, तदियं निश्चिता मसि ।
 सेनां तां सबलं हन्मि, भवतो यदि संमतिः ॥३९०
 लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा, प्राह रामोदया निधिः ।
 वद लक्ष्मण मा व्यर्थ, दृष्टुमायान्ति संगता ॥३९१
 भरतो मे सुबन्धुवै, कथमेवं करिष्यति ।
 विधि शङ्कर विष्णूनां, पदं प्राप्य न मुह्यति ॥३९२
 भरतं प्रति हे भ्रातः, कदाप्येवनं चिन्तयेः ।
 रामोऽथतज्जम्बोध्य, सलक्ष्मणमशान्तयत् ॥३९३
 रम्यं सुशोभनं दिव्यं, चित्रकूटं शुभाश्रमम् ।
 दृष्ट्वा त्र परमा प्रीतिः, संजाता मम चेतसि ॥३९४
 अग्रे गत्वास्त्र सेनायाः, श्रीभरतोविचार्य चः ।
 परम्प्रभुं प्रियं रामं, दृष्ट्वा सजललोचनः ॥३९५
 ततोऽनमत्तु शिष्टाङ्ग, शत्रुघ्नेन समन्वितः ।
 तदा रामः समुत्थाप्य, गाढमालिङ्ग्य चाग्रतः ॥३९६
 संसिच्य भरतं योग्यं, शुद्धप्रेमाश्रुभिर्जलैः ।
 शुभाशिषं ददौ प्रीत्या; सबन्धुभरताय वै ॥३९७
 ततस्तु लक्ष्मणो वीरो, ववन्दे भरतं मुदा ।
 शुभाशिषं प्रदत्वा सः, सीतां प्रति तथा नतः ॥३९८

वशिष्ठं मातुर् वर्गाञ्ज, पूज्य वर्गान् तथैव च ।
 पूज्या रामादयः सर्वे, प्रणोमुः सादरं मुदा ॥३६६
 शुभाशिषं समादाय, रामोसा पुरुषोत्तमः ।
 आतिथ्यं विदधे सर्वं, स्थापितवान् शुभासनम् ॥४००
 हे गुरो कथ्यतां श्रीमन्, पिता मे कुशलं ननु ।
 रामस्य वचनं श्रुत्वा, वशिष्ठः शोकमाप्तवान् ४०१
 धर्मात्मा ते पिता राम, श्रेष्ठः स्वर्गं समागतः ।
 पितुर्वै मरणं श्रुत्वा, रामो दुःखमुपागतः ॥४०२
 तिलदानायते सर्वे, मन्दाकिनीं समागताः ।
 तथा स्नानं समाचक्रुः, स्तिलदानमकुर्वत ॥४०३
 विधाय दिनमुपवासं, रामसंमिलिता जनाः ।
 प्रातः सर्वे समुत्थाय, मन्दाकिनीं समागताः ॥४०४
 सन्ध्यावगाहनं कृत्वा, तदा वे स्वाश्रमं गताः ।
 अथातो भरतो राम, निर्जगाद प्रियं वचः ॥४०५
 प्रत्यागत्याहि साकेतं, राज्यासनमलं कुरु ।
 मात्रा मे यत्कृतं कार्यं, निन्दनीयं दुःखप्रदम् ॥४०६
 नराज्यं न सुखं कांक्षे, भोगञ्च रामकिङ्करः ।
 राज्यभारं तु संरक्ष, मेऽपराधं क्षमस्व भोः ॥४०७
 भरते चैव मुक्ते च, गुरु रामं जगाद सः ।
 गृहाण राज्यभारञ्च, वचसा राघवस्य हि ॥४०८
 कौशल्या दय एतावै, मातरो ह्यवदन्तदा ।
 भारं वहस्व हे वत्स, प्रत्यागच्छ नृपोत्तम ॥४०९
 सर्वेषां सुवचः श्रुत्वा, निर्जगाद रघूत्तमः ।
 हे वत्स शृणु मे वाक्यं, सत्यञ्चैव सुभाषितम् ॥४१०
 हे गुरो क्षम्यतां देव, ह्याज्ञां मन्ये तव प्रियाम् !
 वक्ष्ये तथापि हे विद्वन्, सत्यत्वं पालनाय वै ॥४११
 भवि त्वयं भवत्येव, चास्ति वै व्याहृता श्रुतिः ।
 सत्यं स्वीकृत्य राजापि, स्वर्गत्वं समवाप सः ॥४१२

वनञ्च गमनं श्रेष्ठं, सति कार्यार्थं गौरवे ।
 वनं यदि न गच्छामि, सत्याद्विचलितो पिता ॥४१३
 तथा विधेयमस्माभिः, पितु राज्ञा यथा भवेत् ।
 रामस्य वचनं श्रुत्वा, भरतः समुदारधीः ॥४१४
 जगाद प्रेमसंगताः, श्रीरामं राघवं प्रति ।
 हे राम करुणाधार, करुणा नाथ वत्सल ॥४१५
 अहं वनं प्रगच्छामि, साकेतं गम्यतां त्वया ।
 भरतस्य मतं ज्ञात्वा, तं जगाद रघूत्तमः ॥४१६
 नैवं युक्तं रघुश्रेष्ठ, त्वं सत्कार्यं विदाम्बरः ।
 वयं सत्यान्ममुक्ताः स्म, विचार्य वद सुव्रत ॥४१७
 सत्यं धर्मं समाश्रित्य, जीवनं शोभनं वरम् ।
 रामस्य चाग्रहं ज्ञात्वा, जगाद भरतोत्तमः ॥४१८
 स्वपादपादुकां देहि, स्थापयामि वरासने ।
 ब्रह्मचर्येण वत्स्यामि, वर्षाणि च चतुर्दश ॥४१९
 राज्यं भारं प्रदास्यामि, सचिवाय सुमन्त्रिणे ।
 नन्दी ग्रामे निवृत्स्यामि, राज्यसेवां करोमि भोः ॥४२०
 इत्येवं समसिद्धान्तं, कृपया भक्तवत्सल ।
 यथा योग्यं तथा चात्र, कुरु राघव पुंगव ॥४२१
 समीचीनं मतं श्रुत्वा, राम आज्ञां ददौ पुनः ।
 श्रेष्ठं गुरुं नमस्कृत्य, मातृश्वजनकं तथा ॥४२२
 पूज्यान् योग्यवरान् श्रेष्ठान्, सर्वाञ्च विससर्ज ह ।
 ततो रामं नमस्कृत्य, शत्रुघ्ना भरतश्च हि ॥४२३
 गृहीत्वा तौ शुभाज्ञां वै, साकेतं प्रस्थितौ शुचा ।
 इति तु विमुखाः सर्वे शोकावेगेन मोहिता ॥४२४
 क्लिष्टमार्गं सति क्रम्य, विमनाः स्वपुरीं गताः ।
 पुरीं गत्वा तदा शिष्य, यथाह विधिना मुदा ॥४२५
 रा०—४

वैदिकैः स्मृति मन्त्रैश्च, परमादर चान्वितैः ।
 ते तत्र स्थाप यामसुः, पादुके ते शुभासने ॥४२६
 तदेत्थं भरतः श्रीमान्, तत्रत्यां राज संसदि ।
 योग्य श्रेष्ठानमा त्यान् वै, तत्तद्भागै नियुज्य च । ४२७
 तद् राज्यस्य प्रबन्धं सः, चकार भरतोत्तमः ।
 तपस्वि व्रत माश्रित्य, नन्दी ग्रामं तदा बसत् ॥४२८
 श्रीराममेव ध्यायन्तं, स्मरन्तराममे वच ।
 रामं भक्ति रतं नित्यम्, नमामि भरतोत्तमम् ॥४२९
 रामं दूर्वा दल श्यामं, पीत कौशेय वास सम् ।
 व्यापकं परमानन्दं, वन्दे निर्गुणमद्वयम् ॥४३०
 कौशल्यायाः सुत रामं, वन्दे दशरथात्मजम् ।
 अयोध्यायाः सुनेतारं, पूज्यं विष्णुं परात्परम् ॥४३१
 ये पठन्ति सदा भक्त्या, योध्या काण्डं हि भावतः ।
 तेषाञ्जिते सदा भक्ति, र्वस त्वेव निरन्तरम् ॥४३२
 नमामीशं श्यामं नवघन समं सुन्दर वपुः ।
 त्रिलोकेशं वन्दे सुरधर मुखं पङ्कज निभम् ॥
 सुभक्तानां यस्मै प्रसरति सदा ज्ञान मुदितम् ।
 भजे सीता नाथं जनक तनया लक्ष्मण युतम् ॥४३३

द्वादशो विरामः

इति श्री पं० रामविशाल शास्त्रि विरचिते श्रीरामचरिते

अयोध्याकाण्डम् समाप्तम्

श्रीगणेशायनमः

अथ अरण्यकाण्डम् प्रारभ्यते

गुणाढ्यं श्री रामं शुभयश समूहं शुचितमम् ।
शरण्यं विप्रेशं द्विज कुल जनानां हित करम् ॥
कृतार्चा विप्रेभ्यः सधन मददा तेन विभुना ।
भजे विप्राधीशं द्विजकुल नुतं विप्र वरदम् ॥१

बन्दे बोधमयीं देवीं, जगत्कल्याण कारिणीम् ।
तां ब्रह्माण्डोद्भवां देवीं, शुभदां सुखदां प्रियाम् ॥२
रामभक्ति रता योग्याः, साकेत नागरा जनाः ।
भरतं वै महात्मानं, चक्रुः प्रीतिं सुतं प्रति ॥३

एकदा निज हस्तायां, रामो हि रघुनन्दनः ।
सुन्दराणां सुपुष्पाणि, ह्यचिनोत्परमं मुदा ॥४
उपविष्टा नताः सर्वे, सुरम्यां स्फटिकां शिलां ।
श्री रामो लक्ष्मणश्चै, सीता सर्वाङ्ग सुन्दरी ॥५
हारं रम्यं विनिर्मय, विस्तरेण सुशोभनम् ।
निज हस्तेन सीतां सः परं प्रेम्णा व्यभूषयत् ॥६

इन्द्र पुत्रो जयन्तो ऽसौ, दृष्ट्वा सर्वाङ्ग शोभनाम् ।
छद्मना काक रूपेण, शुभाश्रमं समागतः ॥७
रामभर्गं परीक्षायै, सीतां प्रति समागतः ।
सीताङ्गे स्वपितं दृष्ट्वा, श्रीरामं रघुनन्दनम् ॥८
सीतायाश्चरणे क्षिप्त्वा, चञ्चा चिच्छेद सत्वरम् ।
तदुत्थाय प्रभू रामो, बाण वज्रममुञ्जत ॥९

सः प्रहारेण संतप्त, इन्द्रस्य शरणं गतः ।
न रक्षां प्राप्त वान्तत्र, ब्रह्माणं समुपागतः ॥१०

ब्रह्मा जगाद हे चैन्द्र, रामापराधिनं जनम् ।
 रक्षते पापिनं कस्त्वां, ब्रह्मणापि तिरस्कृतः ॥११
 ततः शिव समीपं वै, जयन्तोऽसौ जगाम ह ।
 राम दण्ड्यं न रक्षामि, सतेनापि निराहतः ॥१२
 आगतो नारदो योगी, परानुग्रह काङ्क्षया ।
 आगच्छन्तं मुनिं दृष्ट्वा, तज्जो वाचननाम वै ॥१३
 हे मुने रक्ष मां देव, त्वं त्रैलोक्यं हितं करः ।
 तस्य कष्टञ्च संवीक्ष्य, कृपालुनिर्जगदतम् ॥१४
 रामस्य शरणं गच्छ, स तापात्तु निरस्यति ।
 तापेन पीडितश्चैन्द्रः, श्रीरामं समुपागतः ॥१५
 ननाम दण्डवद्भक्त्या, प्राह वै राघवं प्रति ।
 दयां कुरुष्व हे नाथ, मेऽपराधं क्षमस्व भोः ॥१६
 तमे काक्षं विधायाशु, संतापान्नि मुं मोच सः ।
 अत्रेः शुभाश्रमं श्रेष्ठं, गन्तुमिच्छामि हे प्रिये ॥१७
 तदा रामादयः सर्वे, महर्षे राश्रमं गताः ।
 आगच्छन्तं मुनिं दृष्ट्वा, प्रणेमुस्ते मुदान्विताः ॥१८
 शुभासनं प्रदत्वाशु, स्वागतं विदधे मुनिः ।
 दर्शनाय समायाताः, सीतानुजसमन्वितः ॥१९
 दर्शनाद्भवतां योगिन्, पापं मे निर्गतं मुने ।
 शुभाशिषं प्रभो देहि, सफलं मे मनोरथम् ॥२०
 भवतां सुकृपा दृष्टिः, जनानां शुभदायिनी ।
 रामस्य वचनं श्रुत्वा, गुरुलोकं नमस्कृतः ॥२१
 जगाद परमाप्रीतिं, युक्तो रामं मुदान्वितः ।
 हे राम करुणासिन्धो, भक्तवत्सल हे प्रभो ॥२२
 मायां तव न जानामि, जगत्कल्याणकारणम् ।
 हे प्रभो जगदाधारः, नारायण नरोत्तम ॥२३
 राक्षसानां विनाशाय, चाविर्भवसि भूतले ।
 दीनानां त्रासदाहृन्वै, राक्षसान् जहि हे प्रभो ॥२४

तुभ्यं नमः प्रभोराम, भक्तिं मुक्तिं प्रदेहि भोः ।

चिरन्तना हि कीर्तिः स्यात्, सफलञ्चास्तु कामदम् ॥२५

अनसूया समीपं वै, मान्या सीता ययौ मुदा ।

मातरं सादरं नत्वा, स्तुतिं सीताञ्चकार च ॥२६

पतिं व्रते प्रिये मातः, शुभां शिक्षां प्रदेहि माम् ।

हे सीते त्वं जगन्माता, रामश्च जगतः पिता ॥२७

लक्ष्मणो जगदाधार, जगत्कल्याण कारकः ।

धर्मस्याभ्यु दयार्थं वै, लोक संरक्षणाय तु ॥२८

त्रिधा शक्तिं स्वरूपेण, प्रादुर्भवप्य भूतले ।

हे देवि कथयामि त्वां, नारी शिक्षां सुशोभनाम् ॥२९

अन्यं पतिं तु या स्वप्ने, न कदापिहि पश्यति ।

सोत्तमा ललना चास्ति. सैव मोक्षाधिकारिणी ॥३०

मध्यमान्य पतिं देवि, निजबन्धु समं तथा ।

दृतीया ललना सा वै, धर्मात् सतीत्व मागता ॥३१

अथमा ललना सास्ति, भयाद्वा धर्मं पालिता ।

पतिं प्रवञ्चिका नारी, प्राप्नोति रौरवं सदा ॥३२

पाति वृत्त्यं हि नारीणां, परं धर्मं मुदा हृतम् ।

पतिश्च रोगिणं दीनं, न कदापि परित्यजेत् ॥३३

महा माये महादेवि, पतिं व्रतासि सर्वदा ।

जगद्धिताय हे सीते, शिक्षां निगदितामया ॥३४

सुमातु वचनं श्रुत्वा, जानकी मुदिता भवत् ।

मातरञ्च नमस्कृत्य, जगाम पतिं सन्निधौ ॥३५

महामुनिं नमस्कृत्य, गमनाय मनोदधे ।

रामो सौ भीषणाकारं, विराधं दृष्ट्वान्यदा ॥३६

तमेके नैव वाणेन, जघान सत्वरं तदा ।

दिन्याकृतिं प्रदत्वाच, तस्मै मुक्तिं ददौ मुदा ॥३७

अन्यं वनं तदा जग्मू, रामः सीता च लक्ष्मणः ।

शरभंगस्य योगर्षेः शुभाश्रमं मनोहरम् ॥३८

वन्यं पशुं समालोक्य, रामोर्हर्षं मुपागतः ।
 तदा मुनि वरं सर्वं, प्रणोमुः सादरं मुदा ॥३६
 मुनिः शुभाशिषं दत्त्वा, सञ्चकार स्तुतिं प्रभुम् ।
 हे राम त्वं दया सिन्धो, भक्त वत्सल पाहिमाम् ॥३७
 भक्तानां हृदयं चासि, भय हारिन्नमो नमः ।
 भक्त सद्गतिदानाय, त्वं भ्राम्यसि वनं प्रभो ॥३८
 सीतानाथ कृपा सिन्धो, सर्वापत्ति निवारक ।
 शरभंग स्तुतिं श्रुत्वा, मुनिं रामो जगाद वै ॥३९
 सर्वं भजन्ति ये त्यक्त्वा, वरेष्यमां निरन्तरम् ।
 तेभ्यो मुक्तिं प्रयच्छामि, भक्तिं लोक सुखावहाम् ॥४०
 हे मुने त्वं समाचक्ष्व, पुरतः किं हि दृश्यते ।
 रामस्य वचनं श्रुत्वा, प्रत्युवाच महामुनिः ॥४१
 अस्थि व्यूहं प्रभोराम, तवाग्रे दृश्यतेऽधुना ।
 वीभत्सैः राज्ञसैः क्रूरैः, मुनीनां हिंसनं कृतम् ॥४२
 मुनेर्वचस्तु संश्रुत्य, प्रतिज्ञा मकरोद्भुः ।
 श्रीरामोवै रमानाथो, मुनीनां सन्निधौ तदा ॥४३
 हस्तौ प्रसायं हे सिद्धाः, ब्रवीत्ययं रघूत्तमः ।
 निश्चरेभ्यो विहीनां वै, करिष्यामि सदा धराम् ॥४४

त्रयोदश विरामः

अथाग्रे सुवनं गत्वा, रामो राजव लोचनः ।
 ध्यान स्थितं सुतीक्ष्णं तं, दृष्ट्वा हर्षं मुपागतः ॥४५
 चतुर्भुजं स्वरूपं सो, दर्शयामास तं मुनिम् ।
 परम्प्रभुञ्च दृष्ट्वा हि, सहर्षादुत्थितो मुनिः ॥४६
 स्वभक्तिं सफलां मत्वा, स्तुतिं वै चाकरोत्तदा ।
 बन्दे दूर्वा दल श्यामं, पद्म पत्र निभेक्षणम् ॥४७

चतुर्भुजञ्च तं रामं, स्फुरन्मकर कुण्डलम् ।
 भक्तानां मनुरक्तानां, शान्तिदं शिवदं हरिम् ॥५१॥
 श्री राघवं घनश्यामं, योगीशं योग दायकम् ।
 नमामि रामचन्द्रं वै, राक्षसानां विनाशकम् ॥५२॥
 भजे सीतां महामायां, सर्वांगसुन्दरी शुभाम् ।
 नौमि देवीं सुमीनाक्षा, भक्त कल्याण दायिनीम् ॥५३॥
 गौरमिन्दी वराभम्भै, रामानुजं सुलक्ष्मणम् ।
 नौमि शेषावतारं यं, ब्रह्मज्ञं ब्रह्म चारिणम् ॥५४॥
 हे राम ह्यखिलाधार, भक्तिं मुक्तिञ्च देहि भोः ।
 स्तुतिं श्रुत्वा बुधोरामः, सुतीक्ष्णस्य महात्मनः ॥५५॥
 भक्ताय श्री सुतीक्ष्णाय, ददौ भक्तिं महात्मने ।
 स्वगुरोर्वैद्यगस्तस्य, निवासं चल सुव्रत ॥५६॥
 आज्ञां श्रुत्वाथ रामस्य, जग्मुस्ते चाश्रमं प्रति ।
 कुम्भजस्याश्रमं दृष्ट्वा, श्री रामः पुरुषोत्तमः ॥५७॥
 रम्यं सुशोभनं दिव्यं, वनभागं समन्ततः ।
 अपश्यत्तत्सरिद् युक्तं, नाना वृक्षैः समन्वितम् ५८
 रामागमनं वृत्तान्तं, सुतीक्ष्णोऽकथयद्गुरुम् ।
 सुसंवादञ्च तच्छ्रुत्वा, स्वागताय तथा गतः ॥५९॥
 समागतं मुनिं दृष्ट्वा, प्रणे मुस्ते प्रमोदिताः ।
 मुनिः शुभाशिषं दत्त्वा, प्रायच्छच्च वरासनम् ॥६०॥
 स्वादिष्टैः कन्द मूलैस्तैः, रातिथ्यं विदधे मुनिः ।
 दर्शनात्तव हे राम, तपोमे सफलं भवेत् ॥६१॥
 प्रागेष यत्तु काञ्चेहं, तल्लभे हि परंप्रभुम् ।
 देवेशं नौमि तं रामं, सीता लक्ष्मण संयुतम् ॥६२॥
 इति पूज्यां स्तुतिं श्रुत्वा, रामचन्द्रो महाप्रभुः ।
 तं जगाद मुनिं श्रेष्ठं, योगिवर्यं महा मुनिम् ॥६३॥
 कथयस्व स्व सिद्धान्तं, हनानि येन राक्षसान् ।
 कस्मिन् वने तु गच्छामि, मेस्तु सिद्धं मनोरथम् ॥६४॥

सर्वं जानासि हे राम, त्वं विश्वं वदरी समद् ।
 अन्तर्यामी तथा भूत्वा, पृच्छसि प्राकृतो यथा ॥६५
 वक्ष्येतथापि हे राम, पञ्चवटीं शुभाश्रमम् ।
 नानामुनि गणा कीर्णम्, नाना वृक्ष सुशोभितम् ॥६६
 गोदावर्याः सुतीरे वै, चास्ति रम्यं मनोहरम् ।
 सर्वेषां त्वं मुनीनां नः, कल्याणं कुरु हे प्रभो ॥६७
 तदा मुनिं नमस्कृत्य, पञ्चवटीं समाययुः ।
 शुभां पञ्चवटीं दृष्ट्वा, रामो हर्षं मुपागतः ॥६८
 घनीभूतं वनं रम्यं, गोदावर्यां स्तटे स्थितम् ।
 उत्तमम् दण्डकारण्यं, योगिनां सिद्धि साधकम् ॥६९
 अपश्यत् सुन्दरं दृश्यं, प्राह रामः सुलक्ष्मणम् ।
 कुटीं रचय शीघ्रं त्वं, पञ्चवट्याः शुभाश्रमे ॥७०
 सुमुनीनां सहाय्येन; कुटीञ्चैव सुशोभनाम् ।
 लक्ष्मणः सुख सम्पन्नो, दिव्यां व्यरचयत्तदा ॥७१
 पञ्चवट्यां प्रभू रामः, सर्वदा नन्द यन्मुनीन् ।
 मोदया मास सर्वान् हि, मृगान् पशूञ्च पक्षिणः ॥७२
 समागते प्रभौ रामे, दण्डकं तु सुशोभितम् ।
 एकदा मुनयः सर्वे, दर्शनाय समागताः ॥७३
 सीतया सहितं रामं, लक्ष्मणेन समन्वितम् ।
 आनन्देन हि पप्रच्छुः प्रश्नं लोक हितावहम् ॥७४
 तत्त्वं धर्मस्य नो ब्रूहि, हे राम करुणा निधे ।
 हे मुनयः शृणुध्वं वै, धर्मस्य दश लक्षणम् ॥७५
 धृति क्षमा दमोऽस्तेय, शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
 धी विद्या सत्यम क्रोध, दशकं धर्म लक्षणम् ॥७६
 एतानि लक्षणान्येव, ह्याचरन्ति न ये जनाः ।
 सर्वे खर समानास्ते, भारं वहन्ति भूतले ॥७७
 यस्मिञ्जने दया नास्ति, न सत्यं ज्ञान शीलता ।
 न पुण्यं न सदाचारो, न तथा सुख मेधते ॥७८

जीवो नित्यः सदा साक्षी, स्व देहे च प्रकाशते ।

निर्गुणो निर्विकारश्च, ह्यनष्टं सम विद्वित्तम् ॥७६

सूर्यं तु चेश्वरं विद्धि, जीवं तु किरणं तथा ।

यथाग्निं तु प्रभुं मत्वा, जीवं तु हि स्फुलिंगकम् ॥७७

अतर्क्यं बुद्धयो येहि, भगवन्तं भजन्ति वै ।

ते सङ्गतिं लभन्ते तु, नास्तिका न कदाचन ॥७८

सर्वत्र व्यापको विष्णुः, जीवानां हृदि तिष्ठति ।

जानन्ति ये न तं रूपं, खर वत्ते तु बाहकाः ॥७९

आत्मनि परमात्मानं, ध्यात्वा भक्तिं समाचरेत् ।

स एव स्वेश्वरं प्राप्य, चान्ते मुक्तिं समाप्नुयात् ॥८०

वाह्यादम्बर हीना ये, हृदि शुद्धौ हि तत्पराः ।

परां भक्तिं प्रकुर्वन्ति, ते मे भक्त तमा मताः ॥८१

कामादि षड्रिपून् जित्वा, सत्य शील दयान्विताः ।

भक्तिं मे तत्परा ये तु, ते मे भक्त तमा मताः ॥८२

परस्वार्ये रता ये तु, मां भजन्ति प्रतिक्षणम् ।

तिरस्कुर्वन्ति वै स्वार्थं, ते मे भक्त तमा मताः ॥८३

तपस्यां ये प्रकुर्वन्ति, हृदि स्थं मां स्मरन्ति ये ।

पालयन्ति गुरोराज्ञां, ते प्राप्नुवन्ति मां सदा ॥८४

हे सु सिद्धाः शृणुध्वं वै, यूयम् मान्याः सदैव मे ।

ये भजन्ति तु मां भक्तया, तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥८५

पञ्चवट्यां यदा रामः, सुखेन न्यवसत्तदा ।

मोदया मास सर्वान्तु; स्त्रोपदेशेन वै मुनीन् ॥८६

किञ्चित् कालं प्रिये देवि, अग्नौ निवस भामिनि ।

नरलीलां करिष्यामि, हनिष्यामि निशाचरान् ॥८७

तदा शूर्पणखा नाम्नी, राक्षसी काम रूपिणी ।

स्व रूपं भूषयित्वा च, दण्डकं समुपागमत् ॥८८

दृष्ट्वा रामस्य रूपं सा, सद्यस्तु मोहिताऽभवत् ।

रामस्य निकटं गत्वा, जगाद काम मोहिता ॥८९

कौ युवां सुन्दरौ वालौ, सुन्दरी सहितौ प्रियौ ।
 किमर्थं मागतौ वीरौ, दण्डकारण्य कानने ॥६३
 राक्षसी वचनं श्रुत्वा, जगाद रघुनन्दनः ।
 कोशलेशात्मजौ वीरौ, रामञ्च लक्ष्मण स्तथा ॥६४
 सीता देवी सुपत्नी मे, वनवासाय चागताः ।
 प्रत्यभिज्ञां समाज्ञाय, प्राह शूर्पणखा प्रभुम् ॥६५
 मत्समा सुन्दरी नास्ति, त्वत्समः पुरुषो नहि ।
 एवं विचार्य हे श्रेष्ठ, ह्यावयोः संगमः शुभः ॥६६
 राक्षस्या वचनं श्रुत्वा, श्रीरामस्तामुवाच सः ।
 पत्नी मे ललने चास्ति, प्रति गच्छ हि लक्ष्मणम् ॥६७
 सौमित्रं प्रति गत्वा च, प्राह शूर्पणखा तदा ।
 मनोद् वाह्य हे वीर, त्वत्समः पुरुषो नहि ॥६८
 समा मे नास्ति नारी वै, भूतले नैव दृश्यते ।
 एवं विचार्य हं वीर, निवसावः सुखेन भोः ॥६९
 किं व्यर्थं च युवावस्थां, वानप्रस्थेन नश्यसि ।
 मया सहोप भोगेन, किं मुदं न लभस्व भोः ॥१००
 संसारस्य सुखं सर्वं तपसा किं विनश्यसि ।
 मद्वरणेन हे वीर, राज्यं प्राप्नोसि निश्चितम् ॥१०१
 विवदन्तीं शठां दृष्ट्वा, कामिनीं व्यभिचारिणीम् ।
 नासा कर्णौ विच्छेद, लक्ष्मणश्च परंतः ॥१०२
 रुदती राक्षसी रौद्रा, प्रत्युवाच खरं तदा ।
 दूषणं त्रिशिराञ्चैव, जगाद तदनन्तरम् ॥१०३
 अयोध्यायाः कुमारौ द्वौ, दण्डकंसमुपागतौ ।
 ताभ्यां समं शुभासीता, लोकं भिन्नाहि सुन्दरी ॥१०४
 युष्मभ्यंतां प्रदानाय, काञ्चे सीतां सुसुन्दरीम् ।
 तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणो वीरो, नासा कर्णौ चकर्त हि ॥१०५
 ते सर्वे राक्षसाः श्रुत्वा, पञ्चवटीं समागताः ।
 दुतान्तु प्रेषयित्वा च, संदेशं प्रससार हि ॥१०६

तत्रसंगम्य ते दृताः, श्रीरामं जगदुस्तदा ।
हे राम त्वं निजांभार्यां, खराय देहि भूमृते ॥१०७॥
अन्यथा स्व वनाशाय, संग्रामि तत्परो भव ।
दूतानां वचनं श्रत्वा, प्रत्युवाच रघूत्तमः ॥१०८॥
युस्माद् शान्मृगान्छुद्धान्, मार्गयामि वने सदा ।
स्वामिनं ब्रूत रे दृता, इत्युवाच रघूत्तमः ॥१०९॥
रामस्य वचनं सर्वं, जगदुस्तेस्व भूभुजम् ।
खरादिराक्षसाः सर्वे, चतुर्दश सहस्रकाः ॥११०॥
संग्रामाय समाजग्मुः, सर्वे युद्धाभि काञ्क्षिणः ।
ते गजन्तिचतर्जन्ति, युध्यन्ते च परस्परम् ॥१११॥
सत्वरञ्च प्रभू राम, स्तान्तु सर्वान् नाशयत् ।
स्वर्गाञ्जय जया रावः, पुष्प वृष्टि स्तदा भवत् ॥११२॥

चतुर्दशो विरामः

अथ शुर्पणखा दुष्टा, रावणं समुपागता ।
राक्षसं सर्वं वृत्तान्तं, ह्यवदन् नाश कारिणी ॥११३॥
समागतौ कुमारौ द्वौ, तौच सीता समन्वितौ ।
जन स्थानेहि सर्वास्तान्, राक्षसान् जघ्न तुस्तदा ॥११४॥
संवादं रावणः श्रुत्वा, मृत्यु शंका कुलोऽभवत् ।
रामं साक्षात् प्रभुं विष्णुः ममन्थत स राक्षसः ॥११५॥
हठात् वैरं करिष्यामि, योनिं मान्त्रोमि तामसीम् ।
भक्तिं मे दुर्लभा चास्ति, वैरं योग्यं सुखावहम् ॥११६॥
रावण शर्चेति संमन्त्रय, मारीचं समुपागमत् ।
हे मातुल समात्तुष्ट, काये मे कुरु सांप्रतम् ॥११७॥
मृगस्य स्वर्णरूपं त्वं, धृत्वा मोहय जानकीम् ।
तस्मिन्नेषु शुभे काले, हरिस्थामि च जानकीम् ॥११८॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा, मारीचश्च भया कुलः ।
 प्रेम्णा जगादतं क्रूरं, न रामा मानुषः प्रभो ॥११६
 तेन वैरं कुर्वीथाः कल्याणं क्वापि नास्ति हि ।
 प्रकाराम्यां बधं ज्ञात्वा, गमनाय मतिं दधे ॥१२०
 मृत्यु मस्मात्तुमा श्रेष्ठं, रामच्चैव भवेद्वरम् ।
 स दयालुश्च धर्मात्मा, परां मुक्तिं प्रदास्यति ॥१२१
 तदा स्वर्णं मृगो भूत्वा, पंचवट्यां परिभ्रमन् ।
 विलोकयन्तथा राम, माश्रमं समुपागतः ॥१२२
 अपूर्वतमृगं दृष्ट्वा, स्वर्णं रत्न मयं तदा ।
 सीता प्रहर्षिता जाता, तच्छोभया त्रिमोहिता ॥१२३
 हे प्रभो मृग रत्नं त्वं, शीघ्रं हत्वा समानय ।
 मम च मातृ वर्गाणां, दर्शनाय भविष्यति ॥१२४
 सीताया वचनं श्रुत्वा, सोऽनुधावन् ययौ मृगम् ।
 दूरं ह्यलेन नीतोऽसौ, वाणेनाशु जघान तम् ॥१२५
 तदा माया मृगः शिष्य, हा लक्ष्मण जगाद च ।
 सीता रामं तु संस्मृत्यः प्राणं तत्याज सत्वरम् ॥१२६
 हा लक्ष्मण इति श्रुत्वा, भयभीता च मैथिली ।
 बिलपन्ती नता सीता, क्रीडे गत्वा रुरोद सा ॥१२७
 सौमित्रे स्वाग्रजं पश्य, चिन्तामेस्ति गरीयसी ।
 शुक रूपः प्रभू रामः, परीक्षा मकरोत्तदा ॥१२८
 पुष्पं दृष्ट्वा फलं दृष्ट्वा, दृष्ट्वा स्त्रीणाञ्च यौवनम् ।
 त्रीणि रत्नानि दृष्ट्वैव, कस्य नोच्चलितं मनः ॥१२९
 पिता यस्य शुचिर्भूतो, माता यस्य पतिव्रता ।
 उभाभ्यां यश्च सं, भूत, स्तस्य नोच्चलितं मनः ॥१३०
 घृत कुम्भ समानारी, तप्ताङ्गार समः पुमान् ।
 जानुस्थिता परस्त्री चेत्, कस्यनोच्चलितं मनः ॥१३१
 मनोधावति सर्वत्र, मदोन्मत्त गजेन्द्रवत् ।
 ज्ञानां कुशे समुत्पन्नो, तस्य नोच्चलितं मनः ॥१३२

लक्ष्मणः सत्त्ववादी त्वं, सुमित्रानन्दवर्धनः ।

इक्ष्वाकोश्च कुलोत्पन्नो, ब्रह्म चारिन्नमोनमः ॥१३३

परीक्ष्य लक्ष्मणं तत्र, शुक रामस्तदा गतः ।

शीघ्रं त्वं लक्ष्मणो गच्छ, बिलम्बं कुरुष्वे कथम् ॥१३४

चिन्ता बलवती जाता, रामाय कष्ट मागतम् ।

निघ्नं वचस्तु संलप्य, गमनाय तदा दिशत् ॥१३५

लक्ष्मणश्च सुरेखां वै, संकील्य विधिना तदा ।

दुरा ग्रहेण सीताया, जगाम राम सन्निधौ ॥१३६

तदा सौ भिक्षु रूपेण, रावणः समुपागतः ।

भिक्षां देहि सुमातर्हे, चेत्युवाच नृपस्तदा ॥१३७

भिक्षां नीत्वा नता सीता, चचाल रावणं प्रति ।

बद्ध भिक्षां न गृह्णामि, वहिरागत्य दीयताम् ॥१३८

भिक्षुको विमुखो भूत्वा, गच्छति मे निकेतनात् ।

इति संशोच्य सा सीता, वहिर्गत्वा दधौ पुनः ॥१३९

दुष्टो जहार सीतां तां, रावणो राक्षसेश्वरः ।

हे राम राम भाषन्ती, सा सीता विललाप हि ॥१४०

उपविष्टां रथे सीतां, जटायुर्दृष्टवान् तदा ।

द्वन्द्व युद्धं करिष्यामि, निश्चित्यैव जगाद ह ॥१४१

रुदती राम रामेति, सीता किं नीयते बलात् ।

इत्युक्तवा द्वन्द्व युद्धं च, तेन साकं चकार हि ॥१४२

वृद्धो जटायु वृद्धो सौ, ताडयामास रावणम् ।

क्रोधेन रावणस्तर्हि, तस्य पक्षांश्च कर्तहि ॥१४३

वृद्धत्वात्तु जटायुर्वै, न तस्य समतां ययौ ।

स्थापयित्वा रथे सीतां, लङ्कां यातः स रावणः ॥१४४

आगतं लक्ष्मणं वीक्ष्य, रामः शङ्का मुपेयिवान् ।

हे लक्ष्मण किमर्थं वै, त्यक्त्वा श्रमं समागतः ॥१४५

शुभाश्रमे प्रिया सीता, निश्चितं नास्ति शंसयः ।

दुराग्रहेण जानक्या, रचाहं समागतः प्रभो ॥१४६

आश्रमं सीतया हीनं, दृष्ट्वा रामो विमूर्च्छितः ।
 हे सीते कमलाक्षि त्वां, प्राप्स्यामि कुत्र बल्लभे ॥१४७
 किं शृणोमि च पश्यामि, दण्डकेऽहं समागतः ।
 एतदर्थं महादेवि, वनं प्रति समा ययौ ॥१४८
 हेवृक्षास्तु लता गुल्मा, दण्ड कस्य वनानि भोः ।
 किन्तु दृष्ट्वा श्रुता सीता, यूयं वदत विस्तरम् ॥१४९
 इत्येवं विलपन् रामो, हत पक्षं जटायुषम् ।
 दृष्ट्वा जगाद तं गृध्रं, केन त्वं विहृतोसि भोः ॥१५०
 वलात्तेन हता सीता, रावणेन बलीय सा ।
 युद्धे मां विहतं कृत्वा, स्व लङ्कां सः समाययौ १५१
 हे राम करुणा क्षिन्धो, दीन बन्धो नमः प्रभो ।
 प्राणा गच्छन्ति रामाग्रे, महा भान्यं मम प्रभो ॥१५२
 दीनार्तं सुवचः श्रुत्वा, जगादेति रघूत्तमः ।
 कारणाग्नेहतं पक्षं, ह्युपकारी भवान्प्रभो ॥१५३
 यथास्माकं पिता मान्यः, चक्रवर्ती महायशः ।
 मान्योऽसि मे तथा त्वं वै, गृध्र राजो महायशः ॥१५४
 संस्पृश्य सः कराभ्यां तं, रामो राजीव लोचनः ।
 गृध्रराजस्तदा सद्यः, प्राणान् तत्याज वै मुदा ॥१५५
 चितां रचय हे भ्रातः, गृध्र भारोप यास्यहम् ।
 खग राजञ्च धक्ष्यामि, परोप कारिणं जनम् ॥१५६
 स्व हस्तेन प्रभू रामः, खगराजं ददाह वै ।
 हे लक्ष्मण सदाचारी, दृश्यते पक्षियोनिषु ॥१५७
 परां मुक्तिं प्रदास्यामि, देव मानव दुर्लभाम् ।
 मुक्तिं दत्वा तदा रामो, लक्ष्मणेन समन्वितः ॥१५८
 सीता शोकेन संमग्नः, शवर्या आश्रमं गतः ।
 रामं समागतं श्रुत्वा, शवरी प्रेम संप्लुता ॥१५९

पंचदशो विरामः

समाहृतं परं प्रेम्णा, स्वादिष्टं वदरी फलम् ।
 गृहद्वारमलंकृत्य, स्वगताय समागता ॥१६०
 प्रभोश्चरणयोः नम्रा, दण्डवच्च ननाम सा ।
 वरासनं समासीनौ, धन्विनौ राम लक्ष्मणौ ॥१६१
 आतिथ्यं विदधे प्रेम्णा, शवरी च तपस्विनी ।
 सुस्वाद्य मुप भोज्यं हि, भुज्यतां वदरी फलम् ॥१६२
 हे राम करुणा सन्धो, पुरुषोत्तम राघव ।
 चिराभि काञ्चिणीं मां त्वं, ह्यनुगृहाण मे प्रभो ॥१६३
 रघूत्तम नमस्तुभ्यं, लक्ष्मणेन समन्वितम् ।
 दत्तं फलं सुधी रामः, परं प्रेम्णा चखाद ह ॥१६४
 नारदेन यदुक्तं सत्, तदस्ति सफलं गतम् ।
 अद्यमे जन्म साफल्यं, भवतां दर्शनात् प्रभो ॥१६५
 शवर्या भावनां दृष्ट्वा, श्रीरामो मुदितोऽभवत् ।
 आह भामिनि ते भवितः, ह्यनिर्वाच्या सदैव सः ॥१६६
 भक्तिं नवविधां शृणुस्व त्व मुदा हृत्ताम् ।
 विष्णोः प्रेम्णार्चनं कुर्यात्, द्वितीयं पाद सेवनम् ॥१६७
 कथायाः श्रवणं विष्णोः, कीर्तनं तदनन्तरम् ।
 तल्लीला स्मरणं नित्यं, प्रभोः कुर्वीत वन्दनाम् ॥१६८
 निर्दम्भेन सदा दास्यं, विष्णोरात्म निवेदनम् ।
 सख्य भावेन विष्णुं तं, मानयेच्च यथा विधि ॥१६९
 तव भक्त्या च तुभ्यं वै, मुक्तिं यच्छामि भामिनि ।
 मम पत्नी हृता सीता, रावणेन वलीयसा ॥१७०
 निनाय कुत्र दुष्टस्तां, क्व गच्छामि च भामिनि ।
 श्रेष्ठ स्थलं समाचक्ष्व, स्वकार्यं यत्र सिद्धिदम् ॥१७१
 अन्वेष्यामि शुभां सीतां, वधिष्यामि निशाचरान् ।
 अन्वेष्टुं को सहायो मे, वद देवि सुविस्तरम् ॥१७२
 पम्पा सरोवरं गच्छ, हे प्रभो त्वं दयानिधे ।
 तत्र सुग्रीव मैत्री स्यात्, सः सहायो भविष्यति ॥१७३

मुक्तिं दत्त्वा शर्वैः सः, श्रीरामो लक्ष्मणस्तथा ।
वनभागं भ्रमन्तौतौ, पश्यन्तौवन शोभनम् ॥१७४
सर्वं सौख्यं वरं दिव्यं, पम्पासरं समागतौ ।
तत्तीरे वहवो वृक्षाः, सुन्दरास्तु सुशोभिताः ॥ १७५
हंस सारस सन्नादाः, बक कोकिल चातकाः ।
तत्रासीदुत्तमा शोभा, सरोवरस्य सन्निधौ ॥१७६
पम्पासरस्य शोभाहि, पश्य लक्ष्मण सुव्रत ।
कीदृशानि सुरम्याणि, वनान्युप वनानि च ॥१७७
वसतेः कुरु निर्माणं, सुरम्ये शोभने स्थले ।
श्रुत्वा सुलक्ष्मणोऽनुज्ञां, कुटीं व्यरचयत्तदा ॥१७८
पम्पा सरोवरं स्नात्वा, श्री रामोलक्ष्मणः प्रभू ।
प्रातः सन्ध्यादिकं कृत्वा, वीरौ न्यवसतां मुदा ॥१७९
मुन्यस्ते समागच्छन्, दर्शनाय सुमुत्सुकाः ।
उपदेशान्तथा तेभ्यो, धर्मं शास्त्रेण संमतान् ॥१८०
तस्मिन्नेव ददौकाले, नारदोऽथ समाविशत् ।
मुनिं सत्कृत्य रामोसौमस्कारं तदा करोत् ॥१८१
भवतां दर्शनं ब्रह्मन्, सौभाग्ये नोप लभ्यते ।
त्वं वै ब्रह्मर्षि वर्याणा, मग्नगण्यो महामुनिः ॥१८२
परोपकार संलग्नः, सर्वं लोकं हिते रतः ।
योगीशानां महायोगी, हे देवर्षे नमोस्तु ते ॥१८३
इत्येवं स्तवनं श्रुत्वा, नारदो मुनिरब्रवीत् ।
विष्णु स्त्वं राम रूपेण प्रादुर्भवसि भूतले ॥१८४
दैत्यानां तु विनाशाय, धर्मस्याभ्युदयाय वै ।
नरलीलां विकाशाय, भक्तानां मुदयाय च ॥१८५
रावणेन हृता सीता, तं च शीघ्रं हनिष्यसि ।
एतस्माद् भवतां जन्म, संभूतश्च सुखाय हि ॥१८६
मनीषां लक्षणं ब्रूहि, हे राम त्वं तपोधन ।
नारदस्य वचः श्रुत्वा मुनिं रामा जगाद सः ॥१८७

दम्भ लोभादि हीना ये, तपो यज्ञरताश्च ये ।
 तपस्यां सन्ति संलग्नाः, सर्वं त्यक्तवा भजन्ति माम् ॥१८८
 मुनयः शम शीला वै, ब्रह्मचर्यं मुपासकाः ।
 राम भक्ति रता ये तु, शान्ति प्रियास्तपस्विनः ॥१८९
 रताः परोपकारे वै, ये प्रकुर्वन्ति साधनम् ।
 प्राप्तुवन्ति च ते मां वै, ये सदा मां स्मरन्ति हि ॥१९०
 नारद त्वं तु धन्योसि, सदा कल्याण तत्परः ।
 सदा प्रियो सि विष्णोस्त्वं, भक्ति योग शिखामणे ॥१९१
 पद्मा सरोवरं स्नात्वा, श्रीरामो लक्ष्मण स्तथा ।
 प्रातः सन्ध्यादिकं कृत्वा, मुदा न्यवसतां तदा ॥१९२
 वन्दे विष्णुं सुयोगेशं, सच्चिदानन्द रूपिणम् ।
 चतुर्भुजं हृद्यग्रीवं, शंख चक्र गदाधरम् ॥१९३
 गोविन्दं गोकुलानन्दं, ध्येयं चरण पङ्कजम् ।
 देवकी नन्दनं वन्दे, कृष्णं ज्ञेयं जगद् गुरुम् ॥१९४
 श्री कृष्णं ज्ञान गोतीतं, कंस चाणूर मर्दनम् ।
 पाण्डवानाञ्च नेतारं, राधापतिं नमाम्यहम् ॥१९५
 मुनीनां शान्ति दातारं, रामं भानु कुलोद्भवम् ।
 राघवेशं प्रभुं वन्दे, भक्तानां मुक्ति दायकम् ॥१९६
 राघवस्येति वृत्तं सत्, कलेर्यत्कल्मषाहम् ।
 योध्यायति पः प्रेम्णा, प्राप्नोति दुर्लभां गतिम् ॥१९७
 गुणातीतं विष्णुं कमल नयनं शेष शयनम् ।
 मुखं पद्माकारं पिक लुलित केशं भुजगवत् ॥
 रमेशं गोविन्दं सकल जगतां पालन करम् ।
 चिदानन्दं वन्दे विधिहर नुतं विश्व वरदम् ॥१९८

षोडशो विरामः

इति श्री पं० रामविशाल शास्त्रि विरचिते श्रीरामचरिते

श्रीगणेशायनमः

अथ किष्किन्धाकाण्डम् प्रारभ्यते

दिनेशं विश्वेशं रघुकुल वरं संभव करम् ।
भजे सूर्यं देवं किरण निकरैर्भूषित दिनम् ॥
ग्रहाणां नेतारं कमल नयनं पङ्कज मुखम् ।
वरेण्यं ध्यायामो विदित सवितारं दिनकरम् ॥१

शिवा शिवौ जगद् बन्धौ, ज्ञान विज्ञान मोक्षदौ ।
सर्व संसार सारौ तौ, प्रभू वन्दे गुणा करौ ॥२

ऋष्य मूकं वनं रम्यं, जग्मतू राम लक्ष्मणौ ।
निवासं कृत वन्तौ तौ, चिन्ता ग्रस्तौ च मानसौ ॥३

अग्रजेन प्रिय भ्रात्रा, तिरस्कृतो हि वालिना ।
हनूमता समं कीशः, सुग्रीवो मन्त्रिभिः सह ॥४
न्यवसञ्च सदा सर्वे, ऋष्यमूके वने शुभे ।

वनं समागतौ वीरौ, धन्विनौ राम लक्ष्मणौ ॥५
दृष्ट्वा स शंकिता जाता, ते सुग्रीवादि वानराः ।
हनूमन्तं प्रियं मित्रं, सुग्रीवश्च समाह्वयत् ॥६
हे मित्र तत्र गत्वा त्वं, सुकुमारौ च पश्य भोः ।
किमर्थं मागतौ वीरौ, तदुक्तं चावधारय ॥७

सुग्रीव वचनं श्रुत्वा, विप्र रूपेण सो गतः ।
पृष्ठ वान्तु विनम्रेण, हनूमान् मारुतात्मजः ॥८
तेजस्विनां तु किं तेजः, ग्रहाणां किं दिवाकरः ।
उत्तमानां त्रिदेवानां, विष्णुस्त्वं वा प्रतीयसे ॥९

कौ युवां ज्ञान सम्पन्नौ, किशोरौ नाप्त यौवनौ ।
 क्षत्रियस्य कुमारौ द्वौ, प्रद्योतेये खेरिव ॥१०॥
 ब्रह्मचर्यं व्रते निष्ठौ, भक्ति ज्ञान मुपोसकौ ।
 महीयसां महिष्ठौ च, भासे थे द्वौ प्रभो खिव ॥११॥
 किमर्थं मागतौ वीरौ, भ्राम्यथः गहने वने ।
 वदतं हे नर श्रेष्ठो, पश्यामि चिन्तिता विव ॥१२॥
 हनूमतो वचः श्रुत्वा, वटुं रामो जगाद वै ।
 अयोध्या राजधान्यास्तु, सुतौ दशरथस्य च ॥१३॥
 राम लक्ष्मण नामानौ, विवासारथं समागतौ ।
 विमातुश्चैव कैकेय्या, वरदानाय पालने ॥१४॥
 मध्ये सुदण्डकारण्ये, पञ्चवट्याः शुभाश्रमे ।
 मम पत्नी सती सीता, रावणेन हृता वलात् ॥१५॥
 एतद् वृत्तं तु मे विप्र, स्वाभिज्ञानं प्रियं वद ।
 मत्वास्वं परमात्मानं, पादयोश्च पपात सः ॥१६॥
 हनूमन्तं समुत्थाप्य, गाढं मालिङ्ग्य हर्षितः ।
 प्रेमं मग्नो विभूरामः, सिसिञ्च नेत्र जैर्जलैः ॥१७॥
 शुभाशिषं प्रदत्त्वा हि, रामो लेभे परं मुदम् ।
 लोकनार्थं रमानाथं, निर्जगाद च मारुतिः ॥१८॥
 जाने त्वां परमात्मानं, विष्णु रूपं महाप्रभो ।
 अहं ते सेवकश्चास्मि, हनूमान् मारुतात्मजः ॥१९॥
 सुग्रीवो मे प्रभो स्वामी, चास्मिन्नेव वने स्थितः ।
 अग्रजस्य भयाद् राम, साहाय्यं ते करिष्यति ॥२०॥
 शीघ्रञ्च प्रार्थये राम, गन्तुं सुग्रीवं सन्निधौ ।
 स्वीकृत्य प्रार्थनां योग्यां, गमनाय समुद्यतौ ॥२१॥
 द्वयोश्च स्कन्धयोर्धृत्वा, रामश्च लक्ष्मणस्तथा ।
 गतो वै वायु वेगेन, हनूमांश्च महाबलः ॥२२॥
 ताभ्यां सह च तत्काले, सुग्रीवं समुपाययौ ।
 अपूर्वौ सुकुमारौ हि, दृष्ट्वा हर्षं परित्पुतः ॥२३॥

तयोश्च पादयोः सद्यो, निपपात हि तत्क्षणे ।
 समादरेण सुग्रीव, आतिथ्यं विदधे मुदा ॥२४
 खरारिं रघुनाथं तं, जगाद हनुमान् तदा ।
 सुग्रीवेण समं मैत्री, कुरुष्व हे नृपोत्तम ॥२५
 हनुमद् याचनां ज्ञात्वा, रामः स्वीकृत वन्तदा ।
 अग्निं तु साक्षिणं कृत्वा, सुमैत्रीमकरोत्तदा ॥२६
 मित्रं सुग्रीव मे पत्नी, रावणेन हृता बलात् ।
 न जाने केन मार्गेण, सा नीता रावणेन वै ॥२७
 तस्या रन्वेषणं कार्यं, कठिनं दुस्तरं ननु ।
 अन्वेषणाय तां सीता, शीघ्रं प्रेषय वानरान् ॥२८
 किं कारणाद् वने ह्यस्मिन्, सुग्रीव त्वं तुतिष्ठसि ।
 वृत्तं तद् ब्रूहि सर्वं वैयद् भवता चिकीर्षितम् ॥२९
 दुःखं मित्रस्य मन्यन्ते, नैव येतु सुहृज्जनाः ।
 ते सर्वे नरकं यान्ति, न सुखं न शुभां गतिम् ॥३०
 प्रत्यक्षे प्रिय वक्तारं, परोक्षे कार्यं नाशकम् ।
 वर्जयेत्तादृशं मित्रं, मविश्वस्तं दुखावहम् ॥३१
 सुखे मित्रस्य हर्षं न, दुखे चैव दुःखं नहि ।
 तन्मित्रञ्च परित्याज्यं, न भवेद्दि सुखावहम् ॥३२
 दुर्मित्रेण यथा मित्रं, कुमन्त्रिणा यथा नृपः ।
 स्वातन्त्र्येण यथानारी, व्यभिचारेण सज्जनाः ॥३३
 सङ्गे नैव तु संन्यासी, कुपथ्येन तु रोगिणः ।
 अदृष्टेन कृषी कार्यं, मलसेन कृषीवलः ॥३४
 अनभ्यासेन शास्त्राणि, प्रलोभेन तपस्विनः ।
 पर्यटनेन विद्यार्थी, संमोहेन यथा मनः ॥३५
 भिक्षा वृत्त्या यथा विद्वान्, समादरेण दुर्जनः ।
 अविवेकेन नेतारः, नायकाश्च बहु श्रुताः ॥३६
 सर्वाण्ये तानि नश्यन्ति, यथोक्तं कारणेन वै ।
 दुष्टं मित्रं परित्याज्यं, सुमित्रं प्राणमेवतु ॥३७

भ्रष्टा चारेण नश्यन्ति, सर्वे राज्याधिकारिणः ।
 विश्वास घात युक्तैस्ते, निन्द्याः सर्वे जगज्जनाः ॥३८
 रामस्य नीति युक्तं तद्, वचः संश्रुत्य वानरः ।
 परं भक्तो हि सुग्रीवो, प्रत्युवाच प्रियं वचः ॥३९
 रावणेन हृता सीता, ने न मार्गेण सा गता ।
 दीनार्ता रुदितो सीता, वस्त्राण्याभूषणानि च ॥४०
 प्रक्षिपन्ती सती सीता, दक्षिणस्यां तथा गता ।
 रामाय भूषणं दत्त्वा, कपोशः खेद माप्तवान् ॥४१
 स तत्रा भूषणं प्राप्य, जगाद लक्ष्मणं प्रति ।
 हे लक्ष्मण गुणगार, किं त्वं जानासि मण्डलम् ॥४२
 लक्ष्मणो भूषणं दृष्ट्वा, निर्जगाद प्रभुं प्रति ।
 केयूरं कुण्डलं देव, नैव जानामि हे प्रभो ॥४३
 नूपुरौ तु विज्ञानामि, नित्यं चरणे वन्दनात् ।
 लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा, रामा दुःखमुपागमत् ॥४४
 हे सीते हे विशालाक्षि, प्रिये जनक नन्दिनि ।
 कीदृशीं त्वमवस्थां वै, संप्राप्तासि सुवल्लभे ॥४५
 अत्रागमनसिद्धान्तं, वद मित्र सविस्तरम् ।
 हे प्रभो अथयामि त्वां, वनागमनकारणम् ॥४६
 मय पुत्रस्तु मायावी, नगरं समुपागतः ।
 वालिनं गर्जयित्वा सः, संग्रामाय ह्युपाह्वयत् ॥४७
 अग्रजं प्रति मे प्रीति, रत्यन्ता चाभवत्तदा ।
 सार्धं मामपि नीत्वासौ, युध्दाय चागमत्त्वरम् ॥४८
 कन्दरायाम भूद युद्ध, मतिघोरं भयानकम् ।
 वालिनोत्क महं पूर्वं, पक्षाहान्यत्र तिष्ठ भोः ॥४९
 मास मेक महं तस्थौ, तदाज्ञाप्यधिकं प्रभो ।
 किन्तु न निर्गतो भ्राता, तदा चिन्ताम माऽभवत् ॥५०
 भूत्वा ह्यङ्ग निराशो वै, पुरीं प्रत्यागमं तदा ।
 गुणज्ञैर्मन्त्रिभिः सर्वै, रभिविक्तस्तथा स्थितौ ॥५१

ततो मायाविनं जित्वा, भ्राता मे चा जगाम सः ।
 सौहार्दं सम्परित्यज्य, समन्त्रिणं च मां तथा ॥५२
 राजधान्यास्तदा तस्या, दण्डं दत्त्वा न्यसारयत् ।
 आजगाम भयादेव, ऋष्यमूकं वनं वरम् ॥५३
 बाली मुनेस्तु शापेन, समायाति वनं नहि ।
 तदेव कारणान्नाथ, निर्भयं विचराम्यहम् ॥५४

सप्तदशा विरामः

हे प्रभो जहि दुष्टं वै, बालिनं प्रतिघातिनम् ।
 ममतेन हृताभार्या, पापनं काम चारिणम् ॥५५
 हे सुग्रीव हनिष्यामि, बालिनंकुल घातकम् ।
 तुभ्यं राज्यं प्रदास्यामि, सत्यमेतत् ब्रवीम्यहम् ॥५६
 अपराधं विना त्वां वै, बाली व्यर्थं च दूयते ।
 श्री रामस्य वचः श्रत्वा, सुग्रीवस्तं जगाद वै ॥५७
 यद्ये के नैव बाणेन, सप्ततालान् भिनत्सि च ।
 भवन्तः सफलाः सन्तु, चेति ह्याशास्महे वयम् ॥५८
 बाणं सन्धाय रामोसौ, वाणै केन विभेदह ।
 दुन्दुभेश्चास्थि तालान्वै, तदद्भुतम भूतदा ॥५९
 हे राम करुणा सिन्धो, शङ्के बालि बधं नहि ।
 भवतैकेन वाणेन, सप्तताला विनाशितता ॥६०
 यो युद्धेऽस्ति प्रतिद्वन्दी, बलमर्धञ्च तस्यवै ।
 बालिनं तं समायाति, वरदानं हि बालिने ॥६१
 हन्त व्यश्च प्रयत्नेन, कूटयोद्धास्ति सः प्रभो ।
 सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा, श्रीरामः प्रत्युवाच तं ॥६२
 हे सुग्रीव समागच्छ, प्रति युद्धाय बालिनम् ।
 सः प्रदर्षेण सुग्रीवः, संग्रामाय विनिर्गतः ॥६३

नगर्यां गर्जनां कृत्वा, युद्धाय च समाह्वयत् ।
 गृहीत्वा सुगदां वाली, निर्गमनाय तत्परः ॥६४
 पादौ संगृह्य तारातु, स्वामिनं प्रत्युवाच सा ।
 हे प्रभो किन्न जानासि, कथं युद्धं करोसि भोः ॥६५
 श्री रामो विष्णु रूपो वै, व्युत्पन्नः पृथिवी तले ।
 आगतः सोऽस्ति रामोऽयं, सुग्रीवस्य सहायकः ॥६६
 कल्याणं हे प्रभो युद्धे, नप्राप्स्यसि कदाचन ।
 सुग्रीवेण समंधीमन्, न कदापि च जेष्यसि ॥६७
 तस्माद् विरमतां देव, युद्धाय गच्छ मा प्रभो ।
 ग्राह पत्न्याश्च ताराया, निशम्य वचनं तदा ॥६८
 परेषां गर्जनां देवि, न कदापि श्रुतं मया ।
 रामेण यदि मृत्युश्चेत्, तर्हि सा मोक्ष दायिनी ॥६९
 सुग्रीवेण समं युद्धं, करिष्यामि सदा प्रिये ।
 इत्युत्क्वा सौ तदावाली, युद्धाय च विनिर्गतः ॥७०
 वाली सुग्रीव योर्युद्धं, मभूद्वै रोम हर्षणम् ।
 मुष्टिकां भीषणां वाली, निर्जघान हृदस्तले ॥७१
 चीत्कारञ्च तदा कृत्वा, जगाम राम सन्निधौ ।
 भ्राता वाली प्रभो नास्ति, सोऽस्ति तु बन्धु वातकः ॥७२
 भवतां कथनादेव, चाहं युद्धाय निर्गतः ।
 दयां कुरुष्व हे नाथ, पाहि मां जगदीश्वर ॥७३
 दीनार्तं वचनं श्रुत्वा, सुग्रीवस्य महात्मनः ।
 रघूत्तमः प्रभूरामः, सुग्रीवं प्रत्युवाच ह ॥७४
 एक रूपौ युवां वीरौ, तस्मान्मनश्च शङ्कते ।
 इमां मालां गृहीत्वैव, गच्छेदानीं त्वमाहवे ॥७५
 कण्ठे मालां समाधाय, संग्रामे च तदा गमत् ।
 छन्द युद्धं तदा भूद्वै, गदाभ्यां घर्षणान्ननु ॥७६
 जातं चटा चटा शब्दम्, महाविस्मय कारकम् ।
 सुग्रीवं व्यथितं दृष्ट्वा, रामो राजीव लोचनः ॥७७

वृक्षे लीनस्तदा वाणं, बालिनं चा सृजत्वरम् ।
हे राम राम हे राम, वदन्वाली पपात वै ॥७८

भवतामपराधं किं, प्रभो राम मया कृतम् ।
सुग्रीवो हि प्रियं तुभ्यं, किं शत्रु मां नु मन्यसे ॥७९
किं मस्ति भेद बुद्धिर्वै, हे प्रभो त्वं वदस्व माम् ।
सम दर्शी प्रभो त्वं हि, विपरीतं विवर्त से ॥८०

बालिनो वचनं श्रुत्वा, समस्तं सं जगाद् हि ।
पुत्र वधूः स्वसा चैव, तथानुज वधूश्च वै ॥८१
तनुजेव हि मन्येत, नासद् व्यवरेत् क्वचित् ।
ताषां हरन्ति ये शीलं, ते दण्डयाश्च भवन्ति हि ॥८२
निर्दोषिनं प्रियं श्रेष्ठं, ह्यनुजं परिदूयसे ।

स्वात्मानं त्वं हि हे बालिन्, वधार्हं किन्न मन्यसे ॥८३
अभयं दातु मिच्छामि, कपे यदि त्व मिच्छासि ।
जीवनञ्च प्रदास्यामि, स्वाभि प्रायं वदस्व भोः ॥८४

ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा, प्राह स राघवं प्रति ।
मनुष्याणां मयं धर्मः, वयम् गिरि वने चराः ॥८५
भवतां सम्मुखे नाथ, मृत्युर्भवति मोक्षदा ।

मोक्षदञ्च प्रमुं हत्वा, कमन्यं शरणं भजे ॥८६
पुत्रौ मे तव दासोऽय, मंगदश्च महाबलः ।
ददामि तव सेवार्थं, हस्तौ गृहाण हे प्रभो ॥८७

भवद्विश्व हि मे पुत्रो, रक्षणीयश्च सर्वदा ।
हे राम राम गच्छामि, भवतां हि निकेतनम् ॥८८

इत्युक्त्वा च तदा बाली, स्वर्गं प्रति समायदौ ।
हाहा कारो महानासीत्, तारा सा बिललाप ह ॥८९
रुरोदोञ्चैः स्वरं शिष्य, बाली निधन वार्तया ।

सुग्रीवादि कपि श्रेष्ठाः, शोकं चक्रुः रणस्थले ॥९०
अग्निदाहाय सुग्रीवं, रामश्च निदिदेशतम् ।
तदा तारा सती देवी, महाशोकं चकार हि ॥९१

मोहेन स्वपतिं देवं, दाहाय निसिषेध च ।
 तारायांस्तु शुचं दृष्ट्वा, तां जगाद रघूत्तमः ॥६२
 पंचं भूतैरिदं देहं, त्रिधात्रैव कृतं यदा ।
 देहस्य चालनार्थञ्च, नित्यं जीवं ददाति सः ॥६३
 जीवे गतेमुदेहोऽयं, भवत्येव निरर्थकम् ।
 वायुर्वायौ समायाति तेजस्तेजसि संस्थितः ॥६४
 जलं जले समाविष्टं, स्वामाकाशे प्रतिष्ठति ।
 पृथिवी च पृथिव्यां वै, चाधितिष्ठति हे शुभे ॥६५
 यस्य जीवस्य मोहं ते, न कदापि विलोकितम् ।
 तस्मात्त्यज महा मान्ये, मोहं कष्टं प्रदायकम् ॥६६
 रामस्य चरणे तारा, पतिता मोहं मत्त्यजत् ।
 सुग्रीवश्च महात्मावै, ह्यग्निदाहं तदा करोत् ॥६७
 ते सर्वे संगताः सन्तः, तिलदानं मकुर्वत ।
 रामेण समनुज्ञातो, लक्ष्मणः परवीरहा ॥६८
 किष्किं तां तु समागत्य, चाभिषेकं तदा करोत् ।
 राज्यासने समासीनः, शुशुभे मास्करो यथा ॥६९
 अंगदाय च सुग्रीवो, यौवराज्यं पदं ददौ ।
 सुग्रीवो राज्यं भारञ्च, संदधार मुदेन सः ॥१००
 श्रीरामो लक्ष्मणश्चेवा, तिष्ठतां स्फटिकां शिलाम् ।
 वनशोभा महारम्या, रमानाथे समागते ॥१०१
 पशवः पक्षिणो वन्या, मुमुदिरे चकाशिरे ।
 तदा वर्षा समायाता, लोकान् मोदकरी शुभा ॥१०२
 भ्रातः पश्य मयूरान्वै, चित्रितान् सुमनोहरान् ।
 विष्णो पश्यति भक्तं हि, मोहं बिना गृहीयथा ॥१०३
 नभे गर्जन्ति मेघास्तु, प्रियां बिना यथा मनः ।
 खलु प्रीतिः स्थिरा नैव, विद्युद् यथा चकाषते ॥१०४
 मेघा भूमौ प्रवर्षन्ति, विद्यां प्राप्य यथा बुधाः ।
 छुद्रा नद्यश्च पूर्वन्ते, धनं प्राप्य यथा खलाः ॥१०५

विन्दुघातं हि मेघानां, सहन्ते वै वना न च ।
 दुर्जनानां यथा वाक्यं, सहन्ते चैव सज्जनाः ॥१०६
 सहेव मायया जीवो, यथा जलेन पल्वलाः ।
 तडागा वारिणा तृप्ता, यथा सद्गुणसज्जनाः ॥१०७
 हरितेन तृणेनैव, गुप्तमार्गा भवन्ति हि ।
 यथा पाखण्डवादेन, सद्ग्रन्थास्तु वलोपिताः ॥१०८
 क्रोशन्ति ददुराश्चैव, सुवेद पाठिनो यथा ।
 धरा च शसि संपन्ना, ह्युपकारी जनो यथा ॥१०९
 महा वृष्ट्या यथा क्षेत्राः, स्वातन्त्र्येण यथा स्त्रियः ।
 शासनञ्च विना राजा, सर्वे नश्यन्ति योगतः ॥११०
 चण्डा वायुर्यथा मेघान्, विनाशयति सर्वदा ।
 कुपुत्रास्तु कुलोत्पन्ना, विनश्यन्ति यथा कुलम् ॥१११
 वर्षा गताहि सौमित्रे, शरदर्तुः समागता ।
 फुल्लाः काशा धरायां तु, प्रावृट् बृद्धत्व सूचितम् ॥११२
 अगस्ते ह्युदिते चैव, मार्गास्ते शुष्कतां गताः ।
 यथा लोभान् प्रणश्यन्ति, सन्तोषास्तु सदैव हि ॥११३
 यथा चास्ति तडागेषु, नदीषु, निर्मलं जलम् ।
 तथा त्यजन्ति मोहं वै, मदञ्च संत सज्जनाः ॥११४
 यथा पङ्कं न मार्गे वै, न च रेणुर्हि दृश्यते ।
 नीति नै पुण्य युक्तो हि, तथा राजा सुदृश्यते ॥११५
 नीरागाधे यथा मीनाः, सुखिनः सन्ति भूरिशाः ।
 तथा शान्तिं लभन्ते वै, ये हरेः शरणं गताः ॥११६
 यः शरदात्तपो भ्रातः, जल शीतञ्च नश्यति ।
 सन्तानां दर्शनाच्चैव, यथा पापं निरस्यति ॥११७
 ये शरदागमे क्षुद्राः, जीवा यथा मरन्ति ते ।
 तथा सद्गुरु सम्पकति, संदेहञ्च निरस्यति ॥११८
 गते प्रावृषि सौमित्रे, शारदा वै समागता ।
 सीतायाः सा शुभा वार्ता, प्राप्ता नैव च लक्ष्मण ॥११९

मम वार्तां हि सुग्रीवो, राज्यं प्राप्य निमुञ्चति ।
नाद्याप्यसौ समायात, सीता वार्ता कृते मुदा ॥१२०॥

अष्टदशो विरामः

प्रयुक्तं वालिने बाणं, सुग्रीवाय करोमि तत् ।
सुग्रीवं संहनिष्यामि, मित्रं तं मद मोहितम् ॥१२१॥
क्रोधं रामस्य दृष्ट्वा हि, लक्ष्मणश्च महातपः ।
शरं धनुषि सन्धाय, गमनाय समुद्यतः ॥१२२॥
क्रुद्धं च लक्ष्मणं दृष्ट्वा, प्राह राजीव लोचनः ।
क्रोधं वैकुरुमाणो मा, तं सम्बोध्य च लक्ष्मण ॥१२३॥
शीघ्र मानय सुग्रीवं, सीतान्वेषण हेतवे ।
रामस्य वचनं श्रुत्वा, लक्ष्मणो, सौ समाययौ ॥१२४॥
ततः सुग्रीव राजं तं, वायु स्रुत रूपान्तः ।
जगाद स्ववचः शिष्टं, सीतान्वेषण हेतवे ॥१२५॥
क्रोधिनं लक्ष्मणं दृष्ट्वा, किष्किन्धां तं समागतम् ।
जगदुर्वानरा वृत्तं, सुग्रीवस्य च सन्निधौ ॥१२६॥
अंगदेन समं तारा, हनूमांश्च महाबलः ।
लक्ष्मणाञ्चैव संप्रार्थ्य, किष्किन्धा मानयन् यदा ॥१२७॥
तं नमस्कृत्य सुग्रीव, आतिथ्यं विदधे मुदा ।
जाम्बवन्तं हनूमन्तं, नल नीलादि सारणम् ॥१२८॥
अङ्गदं द्विविदश्चैव, वानरानाह्वय तदा ।
गच्छन्तु वानराः सर्वे, सीतान्वेषण हेतवे ॥१२९॥
मासमेकं सुवृत्तं हि, प्रापयन्तु यदा न वै ।
सर्वान्तदा हनिष्यामि, शृणुध्वं वानरोत्तमाः ॥१३०॥
तदा ते वानराः सर्वे, गमनाय समुद्यताः ।
केचित् गर्जन्ति तर्जन्ति, चिक्करन्ति चलन्ति च ॥१३१॥

हनूमांश्च महावीरो, ह्यंगदादिसु पार्षदाः ।
 रामस्य दर्शनार्थञ्च, सीतान्वेषण हेतवे ॥१३२
 समाययुश्च ते सर्वे, रामचन्द्रस्य सन्निधौ ।
 सादरं ते नमस्कृत्य, गमनाय समुद्यताः ॥१३३
 ताञ्जगाद प्रभूरामः पन्थानः सन्तु वः शुभाः ।
 हनूभते वरिष्ठाय, तस्मै च मुद्रिकां ददौ ॥१३४
 अभिज्ञानाय सीताया मुद्रिकां तां ददौमुदा ।
 शुभ सन्देश मुक्तासौ, ताञ्च सर्वान् व्यसर्जयत् ॥१३५
 अंगद प्रमुखाः सर्वे, वानरास्ते समुत्सुकाः ।
 सीतान्वेषण कार्याय, याम्यां दिशि समाययुः ॥१३६
 नदी गिरीन् व्यतीयाय, सीतान्वेषण तत्पराः ।
 अग्रे गत्वा वलीकीशाः, सम्पातिं तम दर्शयन् ॥१३७
 महागृध्रञ्च संदृश्य, सर्वे वै भय कातराः ।
 ददर्श वानरान् यूथान्, सम्पातिश्च जगाद तान् १३८
 अहो भाग्यं हि मे चास्ति, ब्रह्माहारं तु सांप्रतम् ।
 भुञ्जे सुखेन तत्सर्वं, मुपलब्ध महं प्रभो ॥१३९
 सम्पातेर्वचनं श्रुत्वा, ह्यङ्गदः प्रत्युवाच ह ।
 सुधन्यो वै जटायुश्च, राम कार्ये समर्पितः ॥१४०
 रावणेन समं युद्धं, गृध्रराजश्चकार सः ।
 सीता हरण सम्बन्धे, प्राणान् तत्याज वै मुदा ॥१४१
 वयं तु राम कार्यार्थं, सीता मन्वेष्टु मागताः ।
 विद्वन् यदि त्वया दृष्टा, सीता सर्वाङ्ग शोभना ॥१४२
 ब्रूहि तद्वै समाचारं, यदि जानासि हे खग ।
 अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा, सम्पातिस्तान् जगाद हि ॥१४३
 शृणुध्वं वानराः सर्वे, शुभं वृत्तं निदर्शितम् ।
 सुभ्राताहं जटायोश्च, तिलुदानं करोमि वै ॥१४४
 स्नानविधाय सम्पाति, स्तिलदानं तदा करोत् ।
 उपोस्त प्रबलो गृध्रो, वानरान् प्रत्युवाच हि ॥१४५

गत्वा पश्यामि चाकाशं, सीतां सर्वाङ्ग सुन्दरीम् ।
 इत्युक्त्वा स च सम्पाति, आकाशमुत्पपातह ॥१४६
 लङ्कायां सुन्दरीं सीतां, गृधराजो ददर्शताम् ।
 आकाशाच्च समागत्य, लङ्कायां दृष्ट वानहम् ॥१४७
 इत्युवाच च सम्पाति, भ्रातुः शोकं चकार वै ।
 धन्योऽपि पूज्य मे भ्रातः, राम कार्ये समागतम् ॥१४८
 चन्द्रमा मुनिना प्रोक्तं, तत् सत्यं वर्ततेऽधुना ।
 शत योजन विस्तीर्णं, समुल्लंघ्य सरित्पतिम् ॥१४९
 रावणस्य प्रियां लंकां, पुरीं गच्छन्तु वानराः ।
 गृध्रं प्रणम्य ते सर्वे, समुद्रं प्रति निर्गताः ॥१५०
 समुद्रस्य तटे स्थित्वा, ह्यङ्गदादि सुवानराः ।
 लंघनाय समुद्रस्य, संचक्रुर्मन्त्रणां मुदा ॥१५१
 वानराणां च संगोष्ठ्यां, जाम्बवान् व्याजहार ह ।
 शतयोजन विस्तीर्णं, समुद्रं मकरालयम् ॥१५२
 सुवानरेषु सर्वेषु, कश्चात्र लंवितुं क्षमः ।
 समुद्रं लंघयिष्यामि, दृढ्यामि ताञ्च जानकीम् ॥१५३
 प्रत्यागमनं शंकास्ति, जगाद ह्यङ्गदो यदा ।
 लंघनाय समुद्रस्य, तेऽसमर्था भवन्तदा ॥१५४
 हस्तौप्रसार्य तन्मध्ये, ग्राह च जाम्बवान् मुदा ।
 कथं मौनेन रूपेण, तिष्ठसि वायुनन्दन ॥१५५
 महावीरो सि हे विद्वन्, त्वं मुकायं विदांवरः ।
 अभक्ष्यस्तु सूर्यं वै, यस्माच्च बाल लीलया ॥१५६
 अन्वेष्यसि सतीं सीतां, दृढ्यसि ताञ्च जानकीम् ।
 लंघयिष्यसि वारीशं, लङ्कां विमर्दयिष्यसि ॥१५७
 उत्तिष्ठ त्वं महाबाहा, राम कार्यं समाचर ।
 दृष्ट्वा च जानकीं देवीं, सफलं जीवनं कुरु ॥१५८
 श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं, हनूमान् मारुतात्मजः ।
 भुजौ प्रसार्य सो वीरः, नगर्भं च ननाद च ॥१५९

प्रभुर्विजयतां रामो, लक्ष्मणश्च महाबलः ।
 विजयतां हि सुग्रीवो, बानरेण समन्वितः ॥१६०॥
 लङ्काञ्चैव गमिष्यामि, राम कार्यं करोम्यहम् ।
 समुद्रं लंघयिष्यामि, श्री रामस्यानु कम्पया ॥१६१॥
 जानकी ऋचैव हृदयामि, हनिष्यामि च रावणम् ।
 लङ्काञ्च मर्दयिष्यामि, विधमिष्यामि राक्षसान् ॥१६२॥
 श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं, जाम्बवान् तं जगाद वै ।
 सीतां दृष्ट्वा महाविद्वन्, शीघ्र मे वागमिष्यसि ॥१६३॥
 ब्रह्म विष्णु सुरेन्द्रादीन्, यम रुद्र मरुद्गणान् ।
 सूर्यं वह्निं नमस्कृत्य, गमनाय समुद्यतः ॥१६४॥
 सलक्ष्मणं प्रियं रामं, देवी सीतां समन्वितम् ।
 तानभिवाद्य पिङ्गाक्षः, गमनाय समुद्यतः ॥१६५॥
 प्रहर्षितो महावीरः, सीता मन्वेषणाय तु ।
 लंघनाय समुद्रं वै, हनूमश्चैव निर्गतः ॥१६६॥
 पतिव्रतां शुभां सीतां, मर्यादा सत्यपालनीम् ।
 सर्वश्रेयस्करीं वन्दे, वरदाञ्चैव सिद्धिदाम् ॥१६७॥
 बन्दा महे वयं सर्वे, सीतान्वेषणतत्परम् ।
 रामदूतञ्च योगीशं, सीताशोकविनाशकम् ॥१६८॥
 त्रिकालं यः पठेन्नित्यं, मिदं काण्डं सुशोभनम् ।
 भक्तिं सुलभते सद्यः, परत्र मोक्षमाप्नुयात् ॥१६९॥
 विश्ववन्द्यां महामायां, रामपत्नीं यशस्विनीम् ।
 सद्बृत्तशीलनिर्मात्रीं, वन्दे लंकाभयंकराम् ॥१७०॥
 सुरेशां वागीशं सुयशः शुभदात्रीं विजयदाम् ।
 महापूज्यामाद्यां सकलसुरवन्द्यां सुरहिताम् ।
 गुणाढ्यां वाग्देवीं जगत्मनिरस्ताभगधराम् ।
 सतीं देवीं वन्दे शुचित्तमकरेपुस्तकधराम् ॥१७१॥
 नवदशो विरामः

इति श्री पं० रामविशालशास्त्रिविरचिते श्रीरामचरिते
 अरण्यकाण्डम् समाप्तम्

श्रीगणेशायनमः

अथ सुन्दरकाण्डम् प्रारभ्यते

सुगोपालं वालं प्रणत गति पालं यदु कुलम् ।
यशोदाया मान्यं सहचर नुतं तं स्मृति वरम् ॥
सदा राध्यं कृष्णं स्वजन नुत गोवर्धन धरम् ।
भजे गोपीनाथं सुख शमनुरक्तं प्रति दिनम् ॥१
वन्दे विष्णुं हृषी केशं, मेघ श्यामं गुणा करम् ।
पीताम्बरधरं देवं, चक्रिणं पुरुषोत्तमम् ॥२
मत्स्यं कूर्मश्च वाराहं, हयग्रीवञ्च वामनम् ।
नृसिंहं भार्गवं रामं, कृष्णं वन्दे जगद् गुरुम् ॥
पतिव्रतां शुभां सीतां, मर्यादा शील पालिनीम् ।
सर्वज्ञान प्रदां वन्दे, सुशान्ति शुभ मोक्षदाम् ॥४
अञ्जनी नन्दनं वन्दे, वायु सूनुं महाबलम् ।
रामदूतं प्रियं भक्तं, वन्दे लंका भयं करम् ॥५
श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं, हनूमान् मास्तात्मजः ।
राम कार्यस्य सिद्धयर्थं, गमनाय मनोदधे ॥६
प्रभुविर्जयतां रामो, लक्ष्मणश्च महाबलः ।
विजयतां हि सुग्रीवो, वानरेण समन्वितः ॥७
ब्रह्म विष्णु सुरेन्द्रादीन्, यम रुद्र मरुद् गणान् ।
सूर्य वह्निं नमस्कृत्य, गमनाय समुद्यतः ॥८
स लक्ष्मणं विभुं रामं, देवी सीता समन्वितम् ।
तान भिवाद्य पिङ्गाक्षो, गमनाय समुद्यतः ॥९

विमृश्यैवं महावीरः, सीतामन्वेषणाय च ।
 लंघनाय समुद्रं वै, प्रस्थितो वायुनन्दनः ॥१०
 व्यात्वा हृदि स्थितं रामं, निर्गतो मारुतिस्तदा ।
 सिन्धु तीरे गिरौ तस्मिन्, सः क्षिप्र मारुरोह वै ॥११
 लंघनाय समुद्रस्य, हनुमान् वायु नन्दनः ।
 देहं संकुच्य वेगेन, चौत्पपात तदैव हि ॥१२
 रामबाण समं गत्या, हनुमान् वेगवान् भूत् ।
 तदा तोयनिधि मित्रं, मैनाकं प्रत्युवाच ह ॥१३
 गच्छते वायु पुत्राय, श्रमहारी भव प्रभो ।
 मार्गे गत्वा तु मैनाको, हनुमन्त मुवाच हि ॥१४
 क्षणं विश्रम्य गच्छत्वं, विद्वन् कार्यं विदाम्बर ।
 क्षण मात्रं श्रमित्वा च, प्रत्युवाच कपिस्तदा ॥१५
 राम कार्यं हि कृत्वैव, विश्रामो लभ्यते मया ।
 अग्रे गत्वा तदापश्यत्, सुरसां नाग मातरम् ॥१६
 कपेः सत्त्वं परीक्षार्थं, सुरसा पर्वतोपमा ।
 सत्त्वरं तत्र संजाता, तां दृष्ट्वा विस्मितोऽभवत् ॥१७
 रामकार्याय गच्छामि, मार्गं देहि भयंकरे ।
 मार्गं ददामि तुभ्यं मा, त्वां भक्षयामि हे कपे ॥१८
 सुरसा वचनं श्रुत्वा, द्विगूणं रूपमाप्तवान् ।
 ववृधे च तदा माता, पुनश्च द्विगूणोऽभवत् ॥१९
 वर्धयामास रूपं वै, सुरसा च यथा यथा ।
 द्विगूणञ्चैव पिङ्गाक्षः, सः कृतवान् तथा तथा ॥ २०
 दृष्ट्वा गिरि समं रूपं, हनुमान् मारुतात्मजः ।
 सूक्ष्मं रूपं समाधाय, विवेश सुरसा मुखे ॥२१
 तन्मुखे भ्रमणं कृत्वा, निर्गतः सत्त्वरं कपिः ।
 कपेर्बुद्धिं बलं दृष्ट्वा, सुरसामुदिता भवत् ॥२२
 हनुमन् रामकार्ये वै, सफली भव सर्वदा ।
 सः सुरसां नमस्कृत्य, संजज्ञे नाग मातरम् ॥२३

तदाग्रे सुकपिर्गत्वा, निशाचर मनुध्यत ।

पशूनां पक्षिणां छायां, तां दृष्ट्वैव निशाचरः ॥२४

उत्पततः खगान् नवान्, चाकाशे तान् त्वहर्निशम् ।

समुद्रान्तो वसानो वै, स चत्वादं निरन्तरम् ॥ २५

तं निश्चरञ्च हत्वैव, हनुमान यवनात्मजः ।

चचाल सोति वेगेन; सीतां दैर्शनं लालसः ॥ २६

तस्य चोत्पतनं श्रेष्ठ, शुशुभे भास्करो यथा ।

मनोवेगेन गच्छन् वै लंकां प्रति जगाम सः ॥ २७

ययं गिरिं पदं धत्ते, सच याति रसातलम् ।

ततः स्थित्वा त्रिकूटेऽसौ, लंकां ददर्श वानरः ॥ २८

समुल्लङ्घय समुद्रञ्च, लंकां प्राप्तः स वानरः ।

तदैका राक्षसीघोरा, लंका कोटस्य रक्षिका ॥२९

हनुमन्तश्च दृष्ट्वा सौ, जात हर्षा ननाद च ।

लंकां समागतं चोर, भक्षयामि हि वानरः ॥३०

वेगं तो हनुमान् वीरो, मुष्टिकां तां जघान वै ।

मुष्टिकायाविघातेन, साधरण्यां पपात च ॥३१

स्मृतिं लब्ध्वा तदा लंका, मारुतिं प्रत्युवाच सा ।

रावणञ्च वरं दत्त्वा, गच्छन् ब्रह्मा जगादमाम् ॥३२

आगमिष्यति वै लङ्के, रामदूतः सु वानरः ।

मुष्टिकां तु यदा त्वां सः, हनिष्यति विघातिक्रीम् ॥३३

तदा जानीहि हे भद्रे, राक्षसानां विनाशनम् ।

सत्संगाच्च परं नास्ति, स्वर्गस्य च सुखं कपे ॥३४

सत्सङ्गं दुर्लभं लोके, सुखदं याति सर्वदा ।

संददर्श पुरीं रम्या, हनुमान् बायुनन्दनः ॥३५

नानोद्यानेन संयुक्ता, सुन्दरां सुमनोहराम् ।

स्वर्णं शृङ्गाटं कोपेतां, हर्म्यं प्रासादं संकुलाम् ॥३६

महार्हं रत्नं भासन्तीं, मणिमाला विभूषिताम् ।

वापीं कूपं तडागैश्च, सवेतः समलंकृताम् ॥३७

विचित्र पवनोद्यानं, लंकायाञ्च सुशोभते ।
 वीथी भी राजमार्गैश्च, पुरीलंका सुदृश्यते ॥३८
 स्वर्णं सिंहासनैः रम्यैः, मणि कुट्टिम वेदिकैः ।
 सुरचितैश्च तुमर्गैः, सैषा लङ्का सुशोभते ॥३९
 सशस्त्र रत्न कोपेतां, स्वस्थ रत्नक रक्षिताम् ।
 मण्डितां वृक्ष वृन्दैश्च, शोभितां पुष्पराजिभिः ॥४०
 प्रविशामि कथं लङ्कां, सर्व संस्कार संस्कृताम् ।
 सूक्ष्म रूपं समाधाय, श्रेष्ठं लंका प्रवेशनम् ॥४१
 ध्यायन् सहृदि रामं वै, हनुमान् मारुतात्मजः ।
 अन्वेषणाय सीतायाः, प्रविवेश पुरीं तदा ॥४२
 रावणस्य गृहं गत्वा, सुरम्यञ्च सुसज्जितम् ।
 ललितं मणि रत्नैश्च, हर्म्य प्रासाद विस्तृतम् ॥४३
 सुन्दरीर्ललना बह्वीः, सर्वालंकार सज्जिताः ।
 ताददर्श हनुमान् वै, दिव्याङ्गना मनोहराः ॥४४
 न तां ददर्श देवी सः, सीतां सर्वाङ्ग शोभनाम् ।
 कस्मिन् स्थाने गता सीता, चेति चिन्तातुरोऽभवत् ॥४५
 कुम्भकण्ठो विकर्णो वै, मेघनादादि राक्षसाः ।
 प्रहस्त माल्यवान् सूर्पः, चैतेषां भवनं गतः ॥४६
 बन्दनीयां न तां सीतां, ददशं हनुमान् कपिः ।
 तदा चिन्तातुरो भूत्वा, चाग्रेगन्तुं मनोदधे ॥४७
 हे राम राम चेत्युक्तं, शब्दं शुश्राव मारुतिः ।
 सुन्दरं भवनं दिव्यं, तुलसी वृक्ष मण्डितम् ॥४८
 रामस्य भजने रक्तं, विभीषणं ददर्श सः ।
 रूपं विप्रस्य धृत्वा सौ, तदा भक्तं जगाद च ॥४९
 राक्षसानां पुरीमध्ये, को मुनिस्त्वमिहागतः ।
 विभीषणो मति श्रेष्ठो, बानरं प्रत्युवाच च ॥५०
 मम विप्र दशा क्षुद्रा, राक्षसानाञ्च सन्निधौ ।
 कष्टदा निन्दनीया च, सर्व दैव हि विद्यते ॥५१

दन्तयोश्च यथा जिह्वा, कुवासं मे निरन्तरम् ।
 रामस्य दर्शनं काञ्चे, को भवान् समुपस्थितः ॥५२
 रावण स्यानुजंमाञ्च, जानीहि त्वं विभीषणम् ।
 जीवनं तु कथं चिद्वै, पालये मित्र सांप्रतम् ॥५३
 हे विभीषण दूतोऽहं, राघवस्य महात्मनः ।
 लंकां प्रति समायातः, सीतामन्वेषणाय हि ॥५४
 सुग्रीवो मम राजास्ति, हनुमानस्मि वानरः ।
 बलाच्चैव हृता सीता, रावणेन वलीयसा ॥५५
 क्वगता नैव जानामि, क्वतिष्ठति वराङ्गना ।
 पुर्यां न प्राप्यते सीता, विचिनोमि पुनः पुनः ॥५६
 हनुमतो वचः श्रुत्वा, राम कार्ये सदा रतः ।
 विभीषणो जगादैव, मारुतिं वायु नन्दनम् ॥५७
 असंख्य राक्षसैर्गुप्तां, सर्व संस्कार संस्कृताम् ।
 हनुमन् गच्छ शीघ्रं वै, चाशोक वनिकां शुभाम् ॥५८
 दृश्यते हि त्वया नाथ तेजस्विनी पातिव्रता ।
 राक्षसोभिश्च संक्रान्ता, सोता दीना कृशा दशा ॥५९
 रामस्य दशनं देव, कदा वै संभविष्यति ।
 रात्रिं दिनश्च हे सौम्य, श्रीरामं चिन्तयाम्यहम् ॥६०
 विभीषणं नमस्कृत्य, वायुसूनुर्महाबलः ।
 रामञ्च हृद्यनुध्याय, ह्यशोक वनिकां गतः ॥६१
 विविच्य मनसा लुब्धः मारुतिर्भीम विक्रमः ।
 रामस्य भजने रक्तां, शिशपातरुभध्यगाम् ॥६२
 जलेन रहितां क्लिन्नां, सुमीनामिव चाकुलाम् ।
 वैदेहीं जानकीं दृष्ट्वा, परं शोक मुपागमत ॥६३
 अहो वै विधि वैचित्र्यं, महतामपि लक्ष्यते ।
 जनकस्य सुता सीता, वधूर्दशरथस्य च ॥६४
 पत्नी पातिव्रता सा तु, श्रीरामस्य महात्मनः ।
 देवरो लक्ष्मणो यस्याः, सा चापि दुख मेधते ॥६५

एक वेणीधरा सीता, कृशादीना पतिव्रता ।
 तेजसा न तु हीनेयं, भास्करस्य यथा प्रभा ॥६६
 कपिवृक्षान्तरे लीनः, सर्वां पश्यति वेदनाम् ।
 रावणोऽसौ महादम्भी, ततः सीतां मुपागतः ॥६७
 प्रत्युवाच सतीं सीतां, प्रिये सीते वरानने ।
 मन्द हास्य मुखेनैव, किञ्च मानैव पश्यसि ॥६८
 प्रिये दृष्टयैकवारं हि, यदि माञ्च निरीक्षसि ।
 वासयिष्यामि तर्हि त्वां, हर्म्य प्रासाद शोभने ॥६९
 सर्वाषु चैव राज्ञीषु, महाराज्ञी भविष्यसि ।
 उच्च भावेन मन्यन्ते, सर्वे राज्याधिकारिणः ॥७०
 मन्दोदरी महाराज्ञी, पूजयिष्यति सर्वदा ।
 तपस्विनं प्रियं रामं, त्यज मैथिलि सवथा ॥७१
 तृण मन्तरतः कृत्वा, प्रत्युवाच मनस्विनी ।
 भास्करञ्च प्रभुं त्यक्त्वा, खद्योतं त्वां कथंभजे ॥७२
 पण्डितो न सुविज्ञोसि, राक्षसस्त्वं निशाचर ।
 इत्थं मा वदरे दुष्ट, जिह्वा किं न च दीर्यते ॥७३
 सीताया वचनं श्रुत्वा, रावणः क्रोध मारुतः ।
 स्वात्मानञ्चैव खद्योतं, श्रुत्वा रामञ्च भास्करम् ॥७४
 अत्यन्तं दुःख माप्तः सः जगाद् जानकीं तदा ।
 मासे नैकेन हे सीते, नवशगा भविष्यसि ॥७५
 कारिष्यसि प्रियं मे न, मंस्यसे नप्रियं यदि ।
 तर्हि त्वां वै हनिष्यामि, चन्द्रहासेन चासिता ॥७६
 सद्यो रामञ्च वध्नामि, लक्ष्मणेन समन्वितम् ।
 शीघ्रं त्वां वश मेष्यामि, त्वं शोचय वरानने ॥७७
 इत्थं तु भर्त्सनां कृत्वा, गृहं जगाम रावण ।
 राक्षसी त्रिजटा नाम्नी, राक्षसीः प्रत्युवाच सा ॥७८
 हे राक्षस्यः शृणुध्वं वै, स्वप्नेदृष्टञ्च यन्मया ।
 रावणस्य कवन्धं वै, तैलाभ्यक्तं दिगंबरम् ॥७९

खरारूढं च गच्छन्तं, ददर्श दक्षिणां दिशम् ।
 राक्षसानां विनाशञ्च, लंका पुर्याश्च दाहनम् ॥८०॥
 तस्मात् सर्वं प्रयत्नेन, सुसेन्या जानकी सदा ।
 लक्ष्मी रूपा प्रिया सीता, विष्णु रूपोस्ति राघवः ॥८१॥
 लंकायाः कुशलं नास्ति, रावणे नैव दुःस्कृतम् ।
 सीता हरणजं पापं, समूलं नाशयिष्यति ॥८२॥

विंशो विरामः

कपिवृक्षान्तरे लीनः, शुश्राव च कथानकम् ।
 देवि रामस्य दूतोहं, दशनाय समागतः ॥८३॥
 दृष्ट्वेत्थं वानरं रूपं, भयं मोहं मुपागता ।
 कां भवान् किञ्च नामासि, कस्माच्च त्वमिहागतः ॥८४॥
 स्वाभिज्ञानं वरं ब्रूहि, रामस्यापि सुवानर ।
 राम वानरयो मैत्री, कथं भूता च हे कपे ॥८५॥
 रामस्य ब्रूहि वृत्तं वै, कथं मान्यामहे वयम् ।
 सीताया वचनं श्रुत्वा, प्रत्युवाच महावली ॥८६॥
 अन्वेषणाय देवित्वां, रामेण प्रेषिता वयम् ।
 श्री रामो राक्षसान् हत्वा, शीघ्रञ्च त्वां स नेष्यति ॥८७॥
 सुग्रीवस्याग्रजो राजा, वाली नाम च वानरः ।
 परस्परे महान् द्वेषः, समुत्पन्नस्तदा भवत् ॥८८॥
 वालीभयात् सुग्रीवः, स्वात्मीयेन समन्वितः ।
 सखा मे चैव धर्मात्मा, वने पश्चात्सरेऽवसत् ॥८९॥
 अग्निम्त्रै सान्निध्यां कृत्वा, राम मैत्री तदा भवत् ।
 पालनाय सुमैत्रीं वै, वालिनञ्च जघान हि ॥९०॥
 प्रहृत्य वालिनं रामः, कपिं राज्येऽभिषिक्तवान् ।
 वानराणां प्रभू राजा, सुग्रीवः समभूतदा ॥९१॥

राम सुग्रीव मित्रत्वात्, सुग्रीवो निदिदेश वै ।
 शत योजन विस्तीर्णं, लंघयित्वा जलाशयम् ॥६२
 अन्वेषणाय हे देवि, त्वामिदानीं मुपागतः ।
 इत्थं वृत्तञ्च मे सौम्ये, रामस्य शृणु जानकि ॥६३
 आसीदशरथो राजा, तस्य पुत्रा मनोहराः ।
 श्रीरामो लक्ष्मणश्चैव, शत्रुघ्नो भरतश्च वै ॥६४
 प्रादुर्भूतास्तु ते पुत्रा, धर्मस्याभ्युदयाय च ।
 सर्वे वै ज्ञान सम्पन्नाः, सर्वे ते च पितुः प्रियाः ॥६५
 कैकेय्या वरदानेन, रामो विवास मागतः ।
 मुनीनां दर्शनं कृत्वा, पञ्च-टयां समागतः ॥६६
 खरादि राक्षसान् हत्वा, मारीचं च जहौ प्रभुः ।
 रावणेन हृता त्वं वै, पम्पासरं समाययौ ॥६७
 ऋष्य मूके वने देवि, सुग्रीव मित्रता भवत् ।
 रामेण कथितं गुप्तं, जयन्तस्थ कथानकम् ॥६८
 अभिज्ञानाय देवित्वांमुद्रिकाञ्च ददौ प्रभुः ।
 अभिज्ञानं च दृष्ट्वा वै परमोद मुपागता ॥६९
 मन्ये त्वां राम दूतं भोः, त्वं वै कायं विशारदः ।
 मासावधिं ददौ मह्यं, रावणो राक्षसेश्वरः ॥१००
 तस्माच्छीघ्रं तु गच्छत्वं, सत्प्रयत्नैर् महा प्रभुन् ।
 रावणस्य वधार्थं हि, शीघ्रञ्ज्ञानय रावणम् ॥१०१
 श्री रामो वानरीं सेनां, सप्तादाय दया निधिः ।
 आगमिष्यति वै लंका, मिति चाशास्महे वयम् ॥१०२
 आश्वस्तां जानकीं दृष्ट्वा, सीतां सुर सुतोषमाम् ।
 रामस्य ध्यानं संमग्नां, प्रहर्षितो महा कपिः ॥१०३
 ध्यायन्ती च पुना रामं, सीता तं सा जगाद वै ।
 दयनीयां दशां गह्वरीं, विकलां प्रापघात कीम् ॥१०४
 न जाने किं कृतं पापं, यस्मादेतादृशं फलम् ।
 एतद् वृत्तं समा चक्ष्व, रामं प्रति महाकपे ॥१०५

हे कपे कुशल ब्रूय, कल्याण मस्तु ते सदा ।
 ब्रुवन्ती चेति सा साता, कपिं तदादिशन् मुदा ॥१०६
 आज्ञां संगृह्य पिङ्गाक्षः, जगाद जानकीं तदा ।
 रामचन्द्रस्तु हे भद्रे, तव दुःखेन दुःखितः ॥१०७
 लंका मागत्यशीघ्रं सो, हनिष्यति च रावणम् ।
 स्वपौत्रेष्वञ्च हृदयामि, रावणाय महात्मने ॥१०८
 नश्यामि वनिका ज्योत्स्नां, हन्मि च राक्षसान् बहून् ।
 आज्ञां देहि महादेवि, पश्चाज्जिगमिषाम्यहम् ॥१०९
 फलं भुङ्क्ष्वयथेच्छन्तन्, यदि शक्तिं महाकपे ।
 आज्ञां प्राप्य कर्पिर्मातुर्जगर्जन् ननाद च ॥११०
 वृक्षाञ्च चूर्णयामास, फलितान्पुष्पितान्तदा ।
 ततस्तु राक्षसाः सर्वे, कपिं प्रति समागताः ॥१११
 समागच्छन्ति ये क्रूरा स्नान् सर्वाञ्च जघान सः ।
 निश्चरास्तेविघातेन, चिक्कन्ति नर्दन्ति च ॥११२
 अल्पेनैर्वाह कालेन, चाशोक वनिकां शुभाम् ।
 वृक्षान् सर्वाञ्च शोभाञ्च, महाकपिर्व्यनाशयत् ॥११३
 आहूता राक्षसाः सर्वे, रावणं समुपाययुः ।
 हे प्रभो वनिका मध्ये, महाकपिः समागतः ॥११४
 सर्वाञ्च फलितान् वृक्षान्, जघान राक्षसान् बहून् ।
 अशोक वार्टिका याश्चः सर्वा शोभां व्यनाशयत् ॥११५
 कपिना वनिकां भग्नां, हनाञ्च राक्षसान् बहून् ।
 श्रुत्वा क्रोध मुपागच्छन्, रावणो लोक रावणः ॥११६
 कुमारं प्रेषयामास, राक्षसैश्च समन्वितम् ।
 अशोक वनिकायांतु, कपीशं हननाय वै ॥११७
 आजगाम कुमारोमौ, बहुभी राक्षसैः सह ।
 वध्नीत राक्षसा यूयं, दुर्विनीतं कुबानरम् ॥११८
 युद्धं विधाय तैः सार्धं, तान् जघानसमारुतिः ।
 अक्षयं सुकुमारं तं, हत्वा जगर्ज वातजः ॥११९

कुमारस्य वधं श्रुत्वा, रावणः क्रोध मूर्च्छितः ।
 मेघनादं समाहूय, संजगाद प्रियं वचः ॥१२०॥
 शीघ्रं गच्छ वली पुत्र, वद्ध्वा मूढं महा कपिम् ।
 संग्रामे जहि मा तत्र, शीघ्रञ्चानय वानरम् ॥१२१॥
 पितुराज्ञां नमस्कृत्य, मेघनादो जगाम ह ।
 द्वन्द युद्धं समाभूद्वै, चोभर्याः रोम हर्षणम् ॥१२२॥
 मुष्टिकां भीषणां घोरां, जघान मारुतिर्यदा ।
 घातेन मेघनादौऽसौ, स्मृतिञ्च विजहौ तदा ॥१२३॥
 मेघनादः स्मृतिं प्राप्य, ब्रह्मास्त्रं प्रयुयोज हि ।
 ब्रह्माज्ञायदि मामन्ये, प्रतिष्ठा ब्रह्मणो गता ॥१२४॥
 एवं ज्ञात्वा महावीरो, नागपाशे बबन्ध ह ।
 मेघनादः कपिं वद्ध्वा, निन्ये रावण सन्निधौ ॥१२५॥
 तदा तु राक्षसा सर्वे, रावणस्य सभागताः ।
 पाशे बद्धं कपिं दृष्ट्वा, निजैर्गाद च रावणः ॥१२६॥
 सुशोभितं फलैः पुष्पैः, सुगन्धं सुन्दरं वनम् ।
 कुतो भवानि हायातो, बलेन केन नाशितम् ॥१२७॥
 हेराजन् राम दृतोऽहं, हनूमान् मारुतात्मजः ।
 सीतां संदर्शनार्थाय, चागतो वनिकार्ममाम् ॥१२८॥
 योवलः सर्व लोकानां, जीवानाञ्चैव पालकः ।
 आदिमध्यावसानेषु, यस्तिष्ठति समेवलः ॥१२९॥
 अयोध्याधिपतैः राज्ञः, कोशलेन्द्रस्य धीमतः ।
 आत्मजो रामचन्द्रो सौ, लक्ष्मणेन समन्वितः ॥१३०॥
 राक्षसानां विनाशाय, धर्मस्याभ्युदयाय च ।
 निःश्रेयसाय भक्तानां, समागत्यात्र तिष्ठति ॥१३१॥
 देवेषु च यथा विष्णू, रामचन्द्रस्थैव च ।
 यथा देवीषु लक्ष्मीसा, तथा सीतेति विद्धि भोः ॥१३२॥
 रावण प्रार्थयेत्वाहं, सर्वत्यक्त्वाहरिं भज ।
 सवान्ध वस्ततो गत्वा, रामस्य शरणं ब्रज ॥१३३॥

सीतां दत्त्वा सुधीः सौम्य, वैरं त्यज सुखीभव ।

पूजा द्रव्यं गृहीत्वा च, रामस्य शरणं ब्रज ॥१३४

हनूमतो वचः श्रुत्वा, रावणो राक्षसोत्तमः ।

हनूमन्तञ्च धीरं तं, प्रत्युवाच स राक्षसः ॥१३५

रे मूर्खे त्वं तु धृष्टोसि, स्वोपदेशं ददासि च ।

गुरुर्मे शंकरश्चास्ति, शठस्त्वं वानरो नहि ॥१३६

रे वानर कथं मूर्खे, राक्षसानिःतास्त्वया ।

रावणस्य वचः श्रुत्वा, मारुतिस्तं जगाद सः ॥१३७

फलं प्रिया च मे जातिः, फलञ्च भक्ष्याम्यहम् ।

आगता ये च मां हन्तुं, तानेव संजघान ह ॥१३८

बध्नीत राक्षसा यूयं, मूर्खे पण्डित मानिनम् ।

धृष्टञ्च लोलुपं धूर्तं, वानरं वन घातकम् ॥१३९

स्याकुर्वन्तु च धीमन्तः, प्राणदण्डं ददाम्यहम् ।

रावणो निर्जगादेत्थं, विभीषणोऽवदत्तदा ॥१४०

राजनीतौ तु हे सौम्य, प्राणदण्डं हि नोचितम् ।

वेत्रघातं कशाघातं, कारागृहनिवेशनम् ॥१४१

किम्वा दृष्टिपथं श्रेष्ठं, निष्कासनं प्रकीर्तितम् ।

राजदूतो वधाहेनि, कदाप्यस्ति नृपोत्तम ॥१४२

विभीषणस्य वाक्यं हि संश्रुत्य राक्षसेश्वरः ।

सभासदां च सान्निध्ये, जगाद रावणोत्तमः ॥१४३

वानरस्य हि लागूलं, प्रियं भवति सर्वदा ।

तस्मात् सर्वं प्रयत्नेन, लागूलं च दहन्तु वै ॥१४४

तदैव राक्षसाः केचित्, वस्त्रमादाय सत्वरम् ।

वस्त्रेण वेष्टयित्वा च, लागूलाग्रपुनः पुनः ॥१४५

मिक्तं तैलेन वै वस्त्रं, मग्निना ददद्दुस्तदा ।

रावणस्याज्ञया तस्मात्, त्यक्तवन्तश्च तं जुते ॥१४६

सीता रामौ स्मरन्तत्र, हनूमान् मारुतात्मजः ।

प्रासादो परिचोत्प्लुत्य, जगर्ज च न नद च ॥१४७

प्रासादाच्छोभनं हर्म्यं, समागत्य महाकपिः ।
 क्षणेन नगरं सर्वं, मग्निना संददाह सः ॥१४८
 राक्षसाश्चैव राक्षस्यः, यातुधान्या वरा स्त्रियः ।
 अग्नि दाहेन ते सर्वे, क्लिश्यमानाः समन्ततः ॥१४९
 फूत्कृत् मारभन्तस्ते, रुद्धुर्दाहं पीडिताः ।
 ददुर्दोषं हि दुष्टाय, रावणाय च नागराः ॥१५०
 सीतां ददात्यसौ किन्न, श्री रामाय महात्मने ।
 रावणस्य च पापेन, लंकेयं नाशं मेष्यति ॥१५१
 उत्साहेन महावीरः, सर्वा लंकां ददाह सः ।
 विभीषणं गृहं त्यक्त्वा, दाहया मास तां पुरीम् ॥१५२
 अथ सीता परिक्रिन्ता, त्रिजटां सं जगाद सा ।
 हे त्रिजटे मम प्राणा, निःसरन्ति च किन्नहि ॥१५३
 यदि मासावधौ रामा, नाममिष्यति हे प्रिये ।
 तर्हि शुभञ्च मे नाशः, निहनिष्यन्ति राक्षसाः ॥१५४
 आगमिष्यति रामोसौ, माखेदं कुरुं भामिनि ।
 सर्वाश्च राक्षसान् हत्वा, तव खेदं हरिष्यति १५
 एतस्मिन्नेव काले तु, राक्षस्येका समागता ।
 ऊचे हनूमतः कर्म, लंकाया दहनादिकम् ॥१५६
 संश्रुत्य दुःखिता सीता, परं खेदं मुपागमत् ।
 श्री रामञ्चैव संस्मृत्य, सुवह्निं प्रार्थयन्तदा ॥१५७
 हे वैश्वानर हे वह्ने, वीति होत्र धनञ्जय ।
 राम दूतस्य शान्त्यर्थं, शीतो भव हनूमतः ॥१५८
 इष्टं प्रतश्च यज्ञं वै, देवता तिथि पूजनम् ।
 कृतं यदि मया देव, शीतो भव हनूमतः ॥१५९
 पातिवृत्यञ्च मेस्तीति, राम भक्ति रतास्म्यहम् ।
 यद्यस्ति धर्मं वृत्तिर्हि, शीतोभव हनूमतः ॥१६०
 यदीने षुदया चास्ति, सत्ये बुद्धिरता यदि ।
 भक्ताना मुप कारोस्ति, शीतो भव हनूमतः ॥१६१

लङ्काञ्च दाहयित्वा सौ, पुच्छं निमज्ज सागरे ।
 अणु रूपं च संघृत्य, सोतां प्रति समागतः ॥१६२
 सीतां देवी नमस्कृत्य, प्रत्युवाच हरिस्तदा ।
 हे मातर्गन्तु मिच्छामि, स्थाभिजानं प्रदोहमे ॥१६३
 रामस्य कृपया देवि, लंकाया दाहनं कृतम् ।
 चतुर्थांशं मया सोम्ये, राक्षसानां विनाशितम् ॥१६४
 शीघ्रं मागत्य रामोऽसौ, तव दुखं हरिष्यति ।
 जयन्तस्य कथामुक्त्वा, करस्य कंकणं ददौ ॥१६५
 हे कपे त्वं समर्थोऽसि, धीर वीर गुणाग्रणीः ।
 सुयोग्यः कृतकृत्योऽसि, नानृण्या त्वद् भवास्यदम् ॥१६६
 तदा देवीं नमस्कृत्य, प्रस्थितागमनाय वै ।
 सुप्रसन्नो महावीरः, जगर्ज च ननाद च ॥१६७
 प्रभुविजयतां रामो, लक्ष्मणश्च महाबलः ।
 विजयतां हि सुग्रीवो वानरैश्च समन्वितः ॥१६८
 इत्युक्त्वा च महावीरः, कपिर्भास्कर सन्निभः ।
 उत्पुत्य च तदा दोर्भ्यां, समुद्रं पारमागमत् ॥१६९

एकविंशो विरामः

पारं गत्वा समुद्रस्य, कपि रूच्यैर्जगर्ज हि ।
 मारुतेर्गजनं श्रुत्वा, वानरास्ते प्रहर्षिताः ॥१७०
 कार्यं रामस्य संपूर्य, हनुमांश्च समागतः ।
 जाम्बवन्तं नमस्कृत्य, निर्जगाद महाबली ॥१७१
 कार्यं मया कृतं सर्वं, लंकाया श्चैव दाहनम् ।
 सीता दृष्ट्वा मया देव, जघानाञ्च राक्षसान् ॥१७२
 प्रसन्ना वानरा श्रेष्ठा, ययुर्मधुवनं शुभम् ।
 नष्टं मधुवनं सर्वैः, सुफलञ्चैव भक्षितम् ॥१७३

दधिमुखः समायातः, सुग्रीवाय शशंस सः ।
 राजन् मधुवनं सर्वं, वानरैश्च विनाशितम् ॥१७४
 सुफलं भक्षितं तैश्च, विनष्टञ्च वनं तदा ।
 वानरस्तवं सनागच्छ, वनं रक्षनिरन्तम् १७५
 राम कार्यं कृतं हृष्टैः, फलं सर्वैश्च भक्षित- ।
 नृपस्य वचनं श्रुत्वा, रक्षकः सुवनं ययौ ॥१७६
 प्रसन्ना वानराः सर्वे, राजमुस्तदन्तरम् ।
 सुग्रीवञ्च नमस्कृत्य, वब्रू राम सन्निधौ ॥१७७
 सादरं ते नमश्चक्रू, रामं राजीव लोचनम् ।
 रामः शुभाशिषं दत्त्वा, प्रोवाच वानरान् प्रति ॥१७८
 किं वृतं सुष्ठु सीतायाः, कथयन्तु हि वानराः ।
 हनुमता कृतं कार्यं, जाम्बवान् व्याजहारह ॥१७९
 रामं प्रति जगद्विद्वत्, हनुमान् मारुतात्मजः ।
 अभिज्ञानाय सीताहि, कंकणं प्रददौ मुदा ॥१८०
 शत योजन विस्तीर्णं, लघयित्वा महोदधिम् ।
 अशोक वनिका मध्ये, सीता दृष्टामया प्रभो ॥१८१
 एक वेणी धरा सीता, कृशा दीना शुचान्विता ।
 प्रतिक्षणञ्च शोचन्ती, निशां दिनमपास्यति ॥१८२
 मत्समक्षे प्रदत्तं वै, मासावधौ सुजीवनम् ।
 कष्टं दं च भयं दत्तं, रावणेन वलीयसा ॥१८३
 चतुर्भागान्तु तान् हत्वा, कृत्वा पुर्याश्च दाहनम् ।
 भयञ्च दर्शयित्वा वै, रामदूतोऽहमागतः ॥१८४
 सीता व्यथाञ्च संश्रुत्य, रामचन्द्रः परम्प्रभुः ।
 दीनोसौ चाश्रु पूर्णाक्षो, हनुमन्त मुवाच हि ॥१८५
 हनुमन् त्वं समर्थोसि, ह्युपकारी महाबली ।
 नानृण्य त्वम वाप्स्यामि, कदापि चैव वानर ॥१८६
 सीता देवी प्रभो राम, जयन्तस्य कथानकम् ।
 उवाच परमो द्विग्ना, ध्यायन्ती त्वां महा प्रभुम् ॥१८७

श्रुत्वा सौ गुप्त संदेशं, दृष्ट्वा तदाहि कंकणम् ।

सीताया मिलनं मत्वा, परं मोद मुपागतः ॥१८८

अंगदं जाम्बवन्तञ्च, सुग्रीवादि सुवानरान् ।

हनूमन्तं नलं नीलं, समाह्वयत्तदा प्रभुः ॥१८९

रावणस्य वधार्थाय, लंकाया गमनाय च ।

पारंर्कर्तुं समुद्रस्य, कुरुध्वं मन्त्रणां मुदा ॥१९०

सर्वे सुमन्त्रणां कृत्वा, गमनाय समुद्यताः ।

रामादि सहिताः सर्वे, हनूमदादि वानराः ॥१९१

समुद्रस्य वरं तोरं, स सेनाश्च समागताः ।

कुर्वन्तो निश्चयं कार्यं, समुद्रं लंघनाय हि ॥१९२

वासभूमिं समालोक्य रामचन्द्रश्च लक्ष्मणः ।

वानराश्च तथा सर्वे, वासञ्च क्रुस्तदा मुदा ॥१९३

अथ मन्दोदरा राज्ञी, रावणं समुपागता ।

पतिं देवं नमस्कृत्य, पादौगृह्य जगाद वै ॥१९४

वैरं माकुरु रामस्य, क्वचिन्नास्ति सुखावहम् ।

साक्षाद् विष्णुश्च रामो सौ, लक्ष्मी सीता तपस्विनी ॥१९५

ताभ्यां सह विरोधोऽयं, सर्वेनाशं कारयति ।

मन्यस्व वचनं मे त्वं, लंकां कल्याण कारकम् ॥१९६

आर्यं रामस्य दूतोऽसौ, यो लंकां समुपागतः ।

तस्य च गर्जनादेव, गर्भां स्त्रवन्ति भूतले ॥१९७

सृष्टिं मुत्पत्तिं कर्त्तायो, यो जगल्लय कारकः ।

जगत्पालनं कर्त्तायो, तेन वैरं करोसि भोः ॥१९८

शिवं ब्रह्मा च यस्याङ्गां, पालयतश्च सर्वदा ।

प्रयत्नानां वलं चास्ति, कथं वैरं करोति भोः ॥१९९

केरक्षां ते करिष्यन्ति, विचाराय प्रभो मुदा ।

हठं त्यज पते सौम्य, रामं भज निशाचर ॥२००

राक्षसानां विनाशाय, धर्मस्याभ्युदयाय च ।

नर रूपेण विष्णुर्वै, प्रादुर्भवति भूतले ॥२०१

स्वाभिन् सीताञ्च संगृह्य, रामस्य शरणं ब्रज ।
 लंकाञ्च राक्षसाञ्चैव कथं नाशं करोसि वै ॥२०२
 बुद्धिस्ते विपरीतास्तु, राक्षस त्वं न बुध्यसे ।
 अहञ्च प्रार्थये त्वां मे, विचिन्तय सुप्रार्थनाम् ॥२०३
 मन्दोऽर्या वचः श्रुत्वा, जहास राक्षसेश्वरः ।
 किं ब्रवीसिप्रिये सुभ्रु व्यर्थं किमुपदिश्यसे ॥२०४
 नार्यो भीरु स्वभावा वै, विमुह्यन्ति भये लघौ ।
 इन्द्राद देवताः सर्वे, प्रकम्पन्ते च मां सदा ॥२०५
 रामेणसह युद्धं वै, करिष्यामि च हे प्रिये ।
 नैव सीतां प्रदास्यामि, यावत्प्राणाश्च मे तनौ ॥२०६
 बुद्धिमतां वारिष्ठो सौ, विभीषणः समाययौ ।
 रावणञ्च नमश्चक्रे, जगादस्वाग्रजं प्रति ॥२०७
 रामेण सह वैरं मा, कुरुण्व हे परंतप ।
 वैरेण तु विनाशं वै, लंकायाः संर्भावष्यति ॥२०८
 लोकवन्द्या मता सीता, रामो विष्णुः परात्परः ।
 गो ब्राह्मण हितार्थाय, राक्षसानां वधाय च ॥२०९
 प्रादुर्भूतः प्रभूरामः, स्वाङ्गादि सहितो नृप ।
 तस्मिन्नैव विरोधोऽयं, प्रकर्तव्य स्त्वया प्रभो ॥२१०
 निर्गुणञ्च परंब्रह्म, सत्तामात्रं तुरीयदम् ।
 निविकारं निरीहञ्च, रामं विद्धि नृपाग्रज ॥२११
 स्वप्नवत् विद्धि मायां भोः, लोभ मोह मदात्मिकाम् ।
 न कल्याणमयीं विद्धि, सर्वनाश मयं जगत् ॥२१२
 विश्ववन्द्या वरा सीता, रामो लोक पितामहः ।
 तौ त्यक्त्वा तु कथं मूढ, कमन्यं तं भजिष्यासि ॥२१३
 सीताहरणजं पापं, त्वां समूलं विनष्टं द्यति ।
 दुर्भावनां परित्यज्य, सद्भावनां भजस्व भोः ॥२१४
 विपरीता कथं बुद्धिः, यत्तु वैरं करोसि तम् ।
 शृणु रावण शीघ्रं त्वं, रामस्य शरणं ब्रज ॥२१५

सीतां दत्त्वा सुरामाय, पापस्य शोधनं कुरु ।
 जहि रावण वैरं तं, लोक मान्यं भजस्व भोः ॥२१६
 विभीषणस्य वत्कव्यं, श्रुत्वा च राक्षसेश्वरः ।
 अन्धी भूतस्तु रोषेण, दन्तान् कटकटाय्यच ॥२१७
 सामर्षेणानुजं शिष्यं, निर्जगाद हि रावणः ।
 रे मूर्खं तव बुद्धिस्तु, विपरीता कथं गता ॥२१८
 रावणेन समं भ्राताः, प्रति योद्धा न भूतले ।
 तथापि प्रतिकूलांगां, समक्षं मे ब्रवीसि वै ॥२१९
 निन्दसित्वं स्व पक्षं वै, शत्रु पक्षं प्रशंससि ।
 शत्रुं भजस्व रे धूर्त, कुलघातकराधम ॥२२०
 त्यज लंकां समागच्छ, निःससार विभीषणम् ।
 निंघ पाद प्रहारं सः, कृतवान् तदनन्तरम् ॥२२१
 भ्रातर्दोषेन दातस्यो गच्छामि राम सन्निधौ ।
 धर्मात्मा प्रस्थितः शीघ्रं, मन्त्रिभिर्युगविभीषणः ॥२२२
 विभीषणं समायातं, दृष्ट्वा सर्वे सतकिताः ।
 संवादं भवदन् रामं, भयभीतां सुवानराः ॥२२३
 हेराम दानं बन्धोहि, त्राहिमां शरणागतम् ।
 उक्त्वा विभीषणः श्रेष्ठ, पादयोश्च पपात ह ॥२२४
 दुराचारेण संतप्तो, रावणेन निराहतः ।
 तस्य भयत्तु दुर्बुद्धेः, त्वामहं शरणं गतः २२५
 स्वीकुरुष्व हि मे सेवां, माञ्छ्रैवानु गृहाण भोः ।
 परं प्रभुञ्च हित्वाहि, कमन्यं शरणं भजे ॥२२६
 विभीषण वचः श्रुत्वा, रामचन्द्रो नराधिपः ।
 प्रेम्णा जगाद तं शिष्य, विभीषणं निशाचरम् ॥२२७
 आगच्छन्त्यपि ये भक्त्या, शत्रवः शरणागतम् ।
 परित्यजामि जान सर्वान्, न राक्षस कदाचन ॥२२८
 अभयं दातु मिच्छामि, तुभ्य हि सक्षसोत्तम ।
 यः शरणं समायाति, तं कदापि भयं नमे ॥२२९

अन्नन्यं माञ्च ये भक्त्या, भजन्ति वै निरन्तरम् ।
 तेषाञ्च हृदये नित्यं, संवसामि प्रतिक्षणम् ॥२३०॥
 कथयित्वा सुधी रामो, विभीषणाय धीमते ।
 समुद्रं साक्षिणं कृत्वा, लंका राज्यं ददौ पुनः ॥२३१॥
 समुद्रं च नमस्कृत्वा, श्रीरामः पुरुषोत्तमः ।
 हे जलधे च वारीश, मार्गं देहि च मां प्रभो ॥२३२॥
 त्रयस्तु दिवसा याताः, प्रार्थयन्तश्च वारिधेः ।
 शठा नैव हि मन्यन्ते विना दण्डेन लक्ष्मण ॥२३३॥
 नन्तस्माद्वन्मि सौमित्रे धनुर्दिव्यं प्रदेहि मे ।
 शोषणाय समुद्रस्य, चापं संगृह्य राघवः ॥२३४॥
 अग्नि वाणञ्च सन्धाय, समुद्रं प्राह मोहिनम् ।
 नत्वं ददासि पन्थानम्, तर्हि शुष्यामि सांप्रतम् ॥२३५॥
 नक्रामत्स्याः समुद्रान्ते, बभूवुर्व्याकुला स्तदा ।
 पूजा द्रव्यं गृहीत्वा सौ, जगाम राम सन्निधौ ॥२३६॥
 रामचन्द्रं नमस्कृत्य, पादयोर्निपपात हि ।
 शुभाशिषं हि दत्त्वा सौ, संतप्तं वारिधिं प्रति ॥२३७॥
 निर्जगाद तदा रामो, मार्गं प्रदेहि सुव्रत ।
 राघवस्य वचः श्रुत्वा, समुद्रः शममाप्नुवान् ॥२३८॥
 कृत्वा रामस्य पूजां सः, समुद्रो व्याजहार तम् ।
 भवतां समुदायेस्तो, नल नीलौ च वानरौ ॥२३९॥
 महर्षिणा वरं दत्तं, ताभ्यां विस्मय कारकम् ।
 यान् स्पृशतो हि पाषाणान्, समुद्रे ल्पावयन्ति ते ॥२४०॥
 साहाय्येन प्रभो राम, कप्योश्च नल नीलयोः ।
 विधाय विस्तरं सेतु, सुत्तारय सुवाहिनम् ॥२४१॥
 कथयित्वा समुद्रो सौ, जगाम निज मन्दिरम् ।
 लङ्घनाय समुद्रस्य, संचक्रे मन्त्राणां प्रभुः ॥२४२॥
 निर्मलं शोभनं दिव्यं, श्रीरामस्य महात्मनः ।
 नरोत्तमस्य चारिज्यं, सुखदं मोक्षदं सदा ॥२४३॥

लंकाया दाहकं वीरं, मशकी कृत राक्षसम् ।
 सीता शोक निहन्तारं, रामदूतं नमाम्यहम् ॥२४४
 सुन्दरे सुन्दरी सीता, सुन्दरे सुन्दरी कथा ।
 सुन्दरे सुन्दरी रामः, सुन्दरे किन्न सुन्दरम् ॥२४५
 प्रपठन्ति हि ये भक्त्या, सुन्दरञ्च सुशोभनम् ।
 सर्वकार्याणि सिद्ध्यन्ति, मरणे मोक्षमाप्नुयात् ॥२४६
 हनूमतं वीरं पवन तनयं लक्ष्मण हितम् ।
 गदा पाणि रौद्रं रघुपति विधेयं प्रिय जनम् ॥
 कपीन्द्रं योगिन्द्रं जनक तनया शोक हरणम् ।
 भजे कौलं देवं कुल शुभकृतेः प्राञ्जलिरहम् ॥२४७

द्वाविंशो विरामः

इति श्री पं० रामविशाल शास्त्रि विरचिते श्रीरामचरिते

सुन्दरकाण्डम् समाप्तम्

—:०:—

श्रीगणेशायनमः

अथ लङ्काकाण्डम् प्रारभ्यते

महादेवं वन्दे, कपिल जनकं सम्पति भरम् ।
 महेशं योगीशं, प्रमथ गण पूज्यं भय हरम् ॥
 प्रभुं विश्वेशंभू, षत शुभ गले पन्नग वरम् ।
 नगेश कामेशं, सुगिरि तनया संयुत शिवम् ॥१
 सेतुबन्धं महादेवं, रामेश्वरं महा प्रभुम् ।
 भक्तानामिष्टदं श्रेष्ठं, नमामि भक्त वत्सलम् ॥२

रामध्येयं वनश्यामं, वन्दे राजीव लोचनम् ।
 पीताम्बर धरं देवं, भक्तानां कामदं प्रभुम् ॥३
 सीता पतिं प्रभुं वन्दे, लोक कल्याण कारकम् ।
 सिद्धि बुद्धि प्रदातारं रामचन्द्रं सुराधिपम् ॥४
 सागरस्य वचः श्रुत्वा, रामो राजीव लोचनः ।
 सुसेतुं बन्धनार्थाय, वानरान् प्रत्युवाच हि ॥५
 प्रारभध्वं त्वरं सेतुं, कुशज्ञा वानरोत्तमाः ।
 नल नीलौ पुरस्कृत्य, कुरुध्वं सेतु बन्धनम् ॥६
 समानयत पाषाणान्, संस्पृश्य च नलादिकम् ।
 सर्वे तु सत्यप्रयत्ने श्च, बध्नन्तु सागरं मुदा ॥७
 रामस्य वचनं श्रुत्वा, हनुमान्निर्जगाद तं ।
 हे प्रभो दीन बन्धोहि नरोत्तम दयानिधे ॥८
 अनन्यास्ते प्रभो भक्ता, दुस्तर भव सागरम् ।
 पारं जनाः प्रगच्छन्ति, त्वन्नाम सेतु बन्धनात् ॥९
 सृष्टि स्थिति लयं कर्त्ता, भगवान् भुवनेश्वरः ।
 तस्मै किं सागरं क्षुद्रं, बन्धनं चास्ति दुस्करम् ॥१०
 हनूमतो वचः श्रुत्वा, रामो हर्षं मुपागतः ।
 बन्धनाय समुद्रस्य, प्रज्ञां तेभ्यो ददौ प्रभुः ॥११
 ततस्तु वानराः सर्वे, संभूय सेतु बन्धनम् ।
 अकुर्वञ्च महासेतुं, नल नीलादि वानराः ॥१२
 सागरस्स्य दृढं सेतुं, दृष्ट्वा रामोति हर्षितः ।
 स्वकार्यं सफलं मेने, वानरान् प्रति मोदितः ॥१३
 परं रम्यं स्थलं दृष्ट्वा, महा योग्यं सुशोभनम् ।
 नाना पुष्प समाकीर्णं वृक्ष श्रेणी समन्वितम् ॥१४
 सागरस्य तरङ्गैश्च, सुगन्ध शीत वायुभिः ।
 मनोहरं समुद्रस्य, तीरञ्चैव सुखावहम् ॥१५
 ततोऽत्र स्थापायष्यामि, शैवं लिङ्गं हि मोक्षदम् ।
 जनानां सुखदं श्रेष्ठं, शान्तिदं च शिवा पतिम् ॥१६

कुरुष्वं सत्वरं प्राज्ञाः, शिवस्य स्थायने मुदा ।

आनन्ताञ्च पूजार्हा, सामग्री ऋव वानराः ॥१७

संश्रुत्य वानराः सर्वे, पूजा द्रव्यं समानयन् ।

लिङ्गञ्च रेणुकाया वै, व्यनिर्मयन् रघूत्तमः ॥१८

पौरोहित्यं समाहूय, यथार्हं विधिना तदा ।

संस्थापिता सुमूर्तिर्वै, श्री रामेण महात्मना ॥१९

सुमूर्तिं स्थापयित्वा सः, स्तोतुं समुप चक्रमे ।

विश्ववन्द्यं महादेवं, शंकरं शान्ति रूपिणम् ॥२०

कामदं शुभदं वन्दे, सर्व कार्येषु सिद्धिदम् ।

रामेश्वरं प्रभुं देवं, सृष्टि संहार कारकम् २१

भक्ताना मिष्टदं वन्दे, शूलपाणि हरं शिवं ।

सर्व विद्या प्रदातारं, गोरीशं वर दायकम् ॥२२

नागेश ऋव योगीशं, चन्द्र चूडं नमामि वै ।

सफलं कुरु मे देव, यत्तु स्वाद्धि मनोरथम् ॥२३

स्तुतिं कृत्वा प्रभू रामो, वानरान् प्रत्युवाच हि ।

रामेश्वरस्य माहात्म्यं, शृणुष्वं वानरा मुदा २४

गङ्गोत्रयाये जलं नीत्वा, स्नापयन्ति शिवं सदा ।

तेषां मनोरथान् सर्वान्, पूरयन्ति महेश्वराः ॥२५

कुर्वन्ति दशेनं भक्ता, रामेश्वरं शिवं तु ये ।

ते प्राप्नुवन्ति चाभीष्टं, भक्तिं मुक्तिं परं सुखम् ॥२६

द्रुहन्ति शूलिने भक्ताः, केचिन्मेहि कदाचन ।

ते मह्यं नहि रोचन्ते, न कदापि च वानराः ॥२७

ये हि चानन्य भावेन, सुमजन्ति शिवं प्रभुम् ।

प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं, लभन्ते सुख सम्पदाम् ॥२८

गच्छन्तु वानराः सर्वे, मुञ्जन्तु शोभनं फलम् ॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा, दन्तान् कट कटाय्य च ॥२९

अगच्छन् कपयः सर्वे, गजन्तो वाटिका मुदा ।

फलानि भक्षयन्तस्ते, रक्षकान हनन्तदा ॥३०

रावणं जगदुः केचित्, भय भीता निशाचराः ।
 समुद्रे बन्धनं कृत्वा, सेनया सहितः प्रभो ॥३१
 समुद्रं लंघयित्वाच, रघुनाथः समागतः ।
 जलधेर्वन्धनं श्रुत्वा, संतप्तो राक्षसेश्वरः ॥३२
 तोयनिधिं पयोधिञ्च, वारीश मुदधिं तदा ।
 जलधिञ्च नदीशं वै, सिन्धुं नीरनिधिं ननु ॥३३
 कम्पतिञ्च समुद्रं किं, बध्वा रामः समागतः ।
 दशमुखैर्जगादैव, चिन्ततो राक्षसेश्वरः ॥३४
 रामं समागतं श्रुत्वा, मन्दोदरी जगामतम् ।
 रावणं प्रत्यगादीदृ, भयेनैव प्रकम्पिता ॥३५
 हे प्रभो शृणु मद्वार्ता, तव श्रेयस्करीं मुदा ।
 समं रामेण वैरं वै, न कल्याणाय रोचते ॥३६
 यो संहरति लोकान्वै, संपालयति योजगत् ।
 विश्वं सृजति यो रामो, वैरं तं प्रति नोचितम् ॥३७
 यो जगतामधीशोहि, जनानाञ्च हितं करः ।
 कल्याणाय च सर्वेषां, माविर्भवति भूतले ॥३८
 महीयसां महिष्ठो वै, तेजस्वी तेजसा मपि ।
 वलिष्ठानां बलं चास्ति, बुद्धिर्बुद्धि मता मपि ॥३९
 न वैरमुचितं तात, रामेण सह मन्यते ।
 वैरं सं त्यज्य हे सौम्य, सीतां रामाय देहिभो ॥ ४०
 समुद्रं लंघयित्वा च, सरामो वै समा ययौ
 राक्षसानाञ्च लंकाया, नाशंशीघ्रं भविष्यति ४१
 जनस्थाने च सर्वान्वै, राक्षसान् संजहार मः ।
 रामेण सह संग्रामे, कदापि नैव जेष्यसि ॥ ४२
 सौभाग्यं रक्ष मे देव, माननीयं समाचार ।
 मन्यस्व सुखदं वाक्य, दुर्वृद्धिं त्यज हे प्रभो ४३
 मन्दोदर्या वचः श्रुत्वा, रावणो राक्षसेश्वरः ।
 स्वल्प भयेन भीता किं, हे कान्ते हठ वादिनि ॥ ४४

भयेन कम्पिता लोका मेन्द्रादि देवतास्तथा ।
 राजानश्च नरा श्रेष्ठाः, भयेन मेच कम्पिते ॥ ४१
 कथं शोच'म भीरुत्वं, न च योग्यं विकृत्य से ।
 न सीताञ्च प्रदास्यामि, श्री रामाय तपस्विने ॥ ४६
 मेघनादोहि मे पुत्रः, शक्रजेता परंतपः ।
 कुम्भकर्णो विकर्णश्च, शत्रुजेता धुरं धरः ४७
 चिन्तां करोसि किंभद्रे, विजेत्येतं न संशयः ।
 विजेतुर्वचनं श्रुत्वा, मन्दोदरी व्यचिन्तयत् ॥ ४८
 वेद्यने सु मेघाहि, प्रवर्षन्ति सुधा जलम् ।
 न चेत्रास्तु प्रफुल्लन्ति, न फलन्ति कदाचन ४९
 एवं पतिर्हृठी चास्ति, न मन्यते कदापि नः ।
 हठिनं स्वामिन निन्द्य, न युक्तमव बोधनम् ॥ ५०
 लोलुपा नैव मन्यन्ते, रुदाचारं प्रतिष्ठितम् ।
 लंका पुर्यां त्रिनाशञ्च, निश्चितं संभविष्यति ॥ ५१
 मन्त्रिणाञ्च समां कृत्वा, रावणो राक्षसोत्तमः ।
 कथं युद्धं करिष्यामि, विचारयन्तु राक्षसाः ॥ ५२
 सचिवान् प्राह लंकेशः, प्रहस्तस्तं जगाद वै ।
 प्रभो लंका पते देव, शृणुस्व प्रार्थनां मम ॥ ५३
 राघवो हि त्रिलोकेशः, जगता मधिपो विभुः ।
 तस्मै सीताञ्च दात्वा वै वैरस्य शोधन कुरु ॥ ५४
 साक्षात् रामोहि विष्णुश्च, लक्ष्मी जनक नन्दिनी ।
 ताम्यां वैरं न वै युक्तं, हे नृपोत्तम रावण ॥ ५५
 सुबेल शैल मागत्य, ततो द्रव्यं रधूतमः ।
 सुरभ्य सुवन दृष्ट्वा, निजगादु च लक्ष्मणम् ॥ ५६
 आसनं रच्यतां भ्रातः, श्रुत्वाज्ञां वीर लक्ष्मणः ।
 सुरभ्यञ्च स्थलं दृष्ट्वा, सो व्यनिर्मय दास नम् ॥ ५७
 विष्टरे तस्थतुर्धीरो पुरुषोत्तम लक्ष्मणौ ।
 हनूमाञ्चाम्बवान् सर्वे, सुग्रीवादि सुवानराः ॥ ५८

सर्वे सदसि तस्थुः, श्रीरामः प्रत्युवाच तान् ।
 यूयं पश्यत चाकाशे, चन्द्र विम्बं सुशोभनम् ॥ ५६
 शोभने चन्द्र विम्बे किं, मृगाङ्ग मिव दृश्यते ।
 सुग्रीवः प्राह हे राम, धरा छायाहि दृश्यते ॥ ६०
 चन्द्रस्य गरलं बन्धु, तस्मात् स्नेहेन संदधे ।
 इत्युवाच तदा रामो, जगाद मारुति स्ततः ॥ ६१
 चन्द्रमा तव दासोस्ति, सदा स्मरति राघवम् ।
 तत् प्रेम्णा हृदये धत्ते, तव रूपं मनोहरम् ॥ ६२
 हनुमत्कल्पनां श्रुत्वा, रामः प्राह प्रहर्षितः ।
 किं विभीषण लंकायां, यथा मेघोऽवलोक्यते ॥ ६३
 लंकायाः शिखरे रम्ये, रावणस्य श्रमस्थलम् ।
 बलवन्तश्च ते सर्वे, तत्र क्रीडन्ति सर्वदा ॥ ६४
 संविश्य रावण स्तत्र, करोति वल मीक्षणम् ।
 ततः श्रुत्वा प्रभू रामः, क्षत्र किरोट कुण्डलम् ॥ ६५
 एकेनैव हिवाणेन, तत्सद्यो विभिदे यदा ।
 अपतन् तुहि ते सर्वे, तदद्भुतम भूतदा ॥ ६६
 रावणः घटनां दृष्ट्वा, जातस्तर्हि सशङ्कितः ।
 मन्दोदरी तदा खिन्ना, सा संजाता त्वहर्निशम् ॥ ६७

त्रयोविंशो विरामः

ततः सदसि रामो सौ, प्रोवाच वानरान् प्रति ।
 लंकेश वृत्त बोधाय, बुद्धि मन्तुञ्ज वानरम् ॥ ६८
 तत्र प्रेषितु मिच्छामि, कच्चिच्च नगरं तदा ।
 रामस्य वचनं श्रुत्वा, जाभववाञ्च जगाद हि ॥ ६९
 अंगदं गमनं श्रेष्ठ, लंका पुरीं नरोत्तम ।
 स बुद्धि मान्तु तेजस्वी, योग्यश्च कार्य साधकः ॥ ७०

दृष्टान्ते निपुण श्चास्ति, वलीषु वलवत्तमः ।
 धचो जाम्बवतः श्रुत्वा, रामो राजीव लोचनः ॥ ७१
 अंगदञ्च समाहूय, जगाद तदनन्तरम् ।
 हे युवराज शीघ्रं वै, गच्छ लंकां पुरीं मुदा ॥ ७२
 त्वं कार्यं कुशलो धीरो, विद्वत्सु बुद्धिमत्तमः ।
 स बोध्य रावणं बीर, कार्यस्य साधनं कुरु ॥ ७३
 कार्यस्य मे न हानः स्या, देवं कार्यं समाचर ।
 प्रणम्य चांगदो वीरं, लंकां गन्तुं समुद्यतः ॥ ७४
 व्यायन सहृदि रामं वै पुरीञ्च प्राविशत्तदा ।
 ये राक्षसाः समागच्छन्, तान् सर्वान् हनत्तदा ॥ ७५
 वालीमुतो महावीरः चैकं हि राक्षसं तदा ।
 प्राहिणोत् कामिनं शीघ्रं, रावणं प्रति सादरम् ॥ ७६
 रावणं समुपागम्य, संवादं तं जगाद सः ।
 तदा हूय कपि क्षिप्र, मंगदञ्च ददर्श हि ॥ ७७
 कीशं समागतं वीक्ष्य, रावणो राक्षसेश्वरः ।
 निशङ्क मंगदं वीरं, प्रत्युवाच निशाचरः ॥ ७८
 आस्यता मासने कीश, किमर्थं त्वं समागतः ।
 कपिर्वरासनं स्थित्वा, कुटिलञ्च भयावहम् ॥ ७९
 दिङ्मुखं राक्षसं भीमं, गिरि कन्दर नासिकम् ।
 वीभत्समति रौद्रञ्च, सो ददर्श भयान कम् ॥ ८०
 स रावणः समासीन, मंगदं प्रत्युवाचतम् ।
 को भवान् किञ्च जानामि, शीघ्रं वद सविस्तरम् ॥ ८१
 वाली नाम्नः कपेः पुत्रं, त्वं मां जानीहि चांगदम् ।
 तवासीन् मे पितुर्मैत्री, त्वां बोधनाय चागतः ॥ ८२
 तस्माद्धेतोस्तु हे राजन्, सत्यं त्वां बाधयाम्यहम् ।
 रामस्य सन्निधिं गत्वा, सीतां दत्वा सुखी भव ॥ ८३
 अधिष्ठाता च लोकानां, बन्धमोक्ष करस्तु यः ।
 सन्त्यज्य तं प्रभुं धीमन्, कथं शान्तिं मवाप्स्यसि ॥ ८४

ब्रह्माणं शंकरं देवं, यत्त्वं भजसि सबदा ।
 सत्यं तौ चापि मन्येते, रामं हृदि प्रतिष्ठितम् ॥८५
 योग्य वंश पुलस्तस्य, पौत्रस्त्वं चासि रावण ।
 शंकरस्य सुभक्तोसि, विपरीतं करोसि भोः ॥८६
 प्रमादात्तु हता सीता, शीघ्रं वै शोधनं कुरु ।
 रामचन्द्रस्य सन्निध्यं, गच्छ त्वं विनयान्वितः ॥८७
 सीतां देवीं समादाय, रामं प्रापयतां सतीम् ।
 स दयालुविभूरामः, तेऽपराधं क्षमिष्यति ॥८८
 अंगदस्य वचः श्रुत्वा, रावणो राक्षसेश्वरः ।
 व्यर्थं मा वद रे कीश, सुरारिं त्वं न वेत्सि माम् ॥८९
 कपिराजस्य पुत्रोह, मित्युक्त्वा त्वं न लज्जसे ।
 वानरस्त्वं तु नोचोसि, गर्ह्यं दौत्यं करोसि भोः ॥९०
 नटेषु नर्तकेषु त्वं, समुत्पन्नोऽसि वानर ।
 धूर्ता च चमला जातिः, किं न दौत्यं करोसि वै ॥९१
 सेन्द्रादि लोकपा पत्तः, विभीषन्ति च सबदा ।
 मूर्खं वानर रे धूर्तं, सीता दातु मुदीर्य से ॥९२
 सीताञ्चैव न दास्यामि, हनिष्यामि च राघवम् ।
 वानरस्य हि सेनायां, प्रति योद्धा न विद्यते ६३
 अहञ्च रामदूतोस्मि, किमित्यु क्तवान लज्जसे ।
 वध्यो दूतस्य योग्योन, तस्मान्नैव वेधाम्यहम् ॥९४
 रावणस्य वचः श्रुत्वा वानरः प्रत्युवाच वै ।
 दन्तान्मङ्कतु सुयोग्योस्मि, तव वै राक्षसेश्वर ॥९५
 प्रभुणाज्ञा न लब्धाहं, तस्माच्च चिन्तयामि भोः ।
 मूढाना मुपदेशो हि, प्रकोपाय न शान्तये ॥९६
 अयशी शपथी क्रोधी, तथा च श्रुति बाधकः ।
 कृपणो निन्दकः कामी, विमूढोभक्ति निन्दकः ६७
 अतिवृद्धो दरिद्रो वै, पापी च तनुपोषकः ।
 विष्णु द्वेषो च रोगीच, जीवन्तोपि मृता यथा ॥९८

इति चोक्तानि पापानि, संधार यसि रावण ।

हठी त्वमय वादी त्वं, "चोक्तं कथं तु" मन्यसे ॥१६६

रे मूखे यदि योद्धा त्वं, पादं मेहि विचालय ॥

प्रभवः प्रतिगच्छन्ति, सीतां त्यक्त्वा ब्रजामिभोः ॥१००

श्रुत्वानि शाचराधूर्ता शचालनाय समुद्यताः ।

असमर्था भवम् सर्वे, स्थानञ्च लज्जिता ययुः ॥१०१

सर्वान् विलज्जितान् दृष्ट्वा, सदा दम्भी निशाचरः ।

तदातु रावणः क्रूरः, पादं गृहीतु मागतः ॥१०२

अंगदः प्राह निर्लेज्जं, धूर्तौसि त्वं प्रभुं भज ।

यथा नमसि मां छद्मी, तथा त्वं तु प्रभुं नमः ॥१०३

जगाम स्वासनं नीचो, रावणो वै विलज्जितः ।

रामस्य विमुखाः शिष्य, प्राप्नुवन्ति सुखं न ते ॥१०४

लज्जिते रावणं दृष्ट्वा, जहास वानरस्तदा ।

न वाक्यं यदि मन्येथाः रावण मे निशाचर ॥१०५

तर्हि त्वं यमराजस्य, गृहं शीघ्रम वाप्स्यसि ।

लंकापुर्याश्च संपत्तिं, सकुलं नाशयिष्यसि ॥१०६

मन्दोदरी तदा देवो, रावणं प्रत्युवाच च ।

हे प्रभो त्वं न जानासि, गतिधातुदुरेत्यया ॥१०७

नानेति वृत्त वेत्तासि, तदाप्यन्धोभवान्प्रभो ।

रामस्य वैर मुत्सृज्य, सीतां दत्वा सुखी भव ॥१०८

देवि नैव च मन्येहं, यामि शत्रु वशं नहि ।

त्रैलोक्यस्य विजेताहं, कथं व्यर्थं ब्रवीषिभो ॥१०९

ततोऽंगदः सुवीरोवै, जगाम राम सन्निधौ ।

सप्रणम्य प्रभुं रामं, लंकावृत्तमवर्णयत् ॥११०

वृत्तं श्रुत्वा तु लंकाया, रामो राजीव लोचनः ।

सवाञ्च वानरान् शीघ्रं, युद्धाय निदिदेश च ॥१११

आज्ञां संप्राप्य कीशास्ते, धावमानाश्च वव्रजुः ।

सर्वे किलकिला शब्दं, संचक्रुश्च मुदान्विताः ॥११२

लंकायां युद्धं वाद्यानि, भेर्यादीनि ह्यनेकशः ।
अवाद्यन्त विचित्राणि, हे शिष्य परितः पुरीम् ॥११३
लंकायाश्च चतुर्द्वारे, चिकुरन्ति नदन्ति च ।
कीशाः किल किला शब्दं, प्रकुर्वन्ति प्रतिक्षणम् ॥११४
येराक्षसाः समाजग्मुः, सर्वाञ्चघ्नश्च वानराः ।
तदा तु हनुमान् वीरः, कालञ्चैव जगर्ज हि ॥११५
हनुमानंगदौ वीरौ, रावणस्य गृहं गतौ ।
जगर्ज तुश्च हर्म्याणां, शृङ्गाणि विनिपाति तौ ॥११६
धूर्तान् स्त्री पुरुषाश्चैव, संजघ्नस्ते च वानराः ।
कीशानां राक्षसाणाञ्च, द्वन्द्वं युद्धं वभूव ह ॥११७
अकम्पनानिपञ्चैव, सूर्यकर्णञ्च दुर्मुखम् ।
क्षणं मात्रञ्च सर्वान् वै, जघ्नस्ते वानरा मुदा ॥११८
मेघनादो निजास्त्रेण, मलं मांसं वर्ष च ।
शस्त्रेणैकेन रामोसौ, सर्वा मायां व्यनाशयत् ॥११९
अंगदेन समं कीशाः, लक्ष्मणश्च परंतपः ।
तथा च हनुमान् वीरो, संग्रामाय समागताः ॥१२०
द्वन्द्वं युद्धं भूत्तीव्रं, सौमित्रि मेघनादयोः ।
ततस्तु मेघनादोऽसौ, वारुणास्त्रं युयोज च १२१
तदैव लक्ष्मणो वीरः, क्षणेन तं व्यनाशयत् ।
जघान ब्रह्मणः शक्तिं, लक्ष्मणस्य तथा हृदि ॥१२२
सति शक्तौ प्रयोगे च, लक्ष्मणो मूर्च्छितोऽपतत् ।
तदा न राक्षसाः सर्वे, तिलमेक मचालयन् ॥१२३
परन्तु हनुमान् श्रेष्ठो, मूर्च्छितं तं गृहीत वान् ।
नीत्वा च लक्ष्मणं वीरं, जगाम राम सन्निधौ ॥१२४
शोकेन व्याकुलो रामः, जाम्बवत्कथनेन हि ।
आनयनाय लंकायाः, सुषेणञ्च मिषं वरम् ॥१२५
प्रेषितवान् हनुमन्तं, सतिकार्यार्थं गौरवे ।
सूक्ष्मरूपञ्च संधृत्य, लंकां प्रति समाययौ ॥१२६

लंकां गत्वा हनूमान्तु, सुषेणञ्च भिषग वरम् ।
 आदरेण नमस्कृत्य, रामाज्ञां निर्जगाद हि ॥१२७
 आज्ञां रामस्य संश्रुत्य, गन्तुमिच्छुर्भिषग्वरः ।
 तं नात्वा हनुमान् वीर, वज्राजराम सन्निधौ ॥१२८
 सुषेणो रामचन्द्रं तं, न नाम च पुनः पुनः ।
 शयानं लक्ष्मणं दृष्ट्वा, निर्दिदेश सुधां वटीम् ॥१२९
 राम प्रेषय शीघ्रं त्वं, द्रोणारव्यञ्च महागिरिम् ।
 वैद्यस्य वचनं श्रुत्वा, प्रेषयामा मारुतिम् ॥१३०
 ध्यायन् स्वहृदितं रामं, मनोतुगं चकार हि ।
 अर्धं मार्गे जगामाशु, वायु मार्गेण मारुतिः ॥१३१
 छद्मिनं कालनेमिं वै, ह्यपयच्छाश्रमं तदा ।
 रूपं भ्रमरिकां हित्वा, पादस्पर्शां हनूमतः ॥१३२
 प्रणम्य च हनूमन्तं, दिव्याङ्गना तदाभवत् ।
 मुनिर्ननिश्चरश्चास्ति, गता स्वर्गं जगाद सा ॥१३३
 देव्याः संश्रुत्य सो वाक्यं, निश्चरं तं जघान हि ।
 रामं हृदि कपिर्ध्यात्वा, द्रोणाचलं जगाम सः ॥१३४
 संजीवनी न बुध्वाप्तौ, वनमुत्पाट्य गतः ।
 प्रसन्नो हनुमान् वीरो, निवासाय तथागतः ॥१३५

चतुर्विंशो विरामः

दृष्ट्वा पथि हनूमन्तं, वाणं चित्तेप शंकितः ।
 उदीर्य राम रामेति, हनूमानपतत्तदा ॥१३६
 श्रीभरतः सशंकोवै, लुलोके भक्त वानरम् ।
 जगाद सः समाचारं, सर्वं तद्भरतं तथा ॥१३७
 संवादं भरतः श्रुत्वा, परं दुःखमवान्पुवान् ।
 अनेनैवहि बाणेन, गच्छ त्वं राम सन्निधौ ॥१३८

प्रणम्य भरतं वीरो, हनुमांश्च समा ययौ ।
 अथाह व्याकुलो रामः, केपेरागमचिन्तया ॥१३६
 सौमित्रे प्रिय हे भ्रातः, कथमेता दृशीदशाम् ।
 प्राप्तवान् त्वं सखे सौम्य, परार्थं सवया मुदा ॥१४०
 जनन्यास्त्वं प्रियो बन्धो प्राप्स्यामि त्वां कथं वर- ।
 प्रियाया हरणञ्चैव, भ्रातुर्वैधिरहं तथा ॥१४१
 लभे किं किं न जानामि, विचित्रा ब्रह्मणो गतिः ।
 उत्तिष्ठ वत्स शीघ्रं च, किं खेद यसि मां बहु ॥१४२
 अर्धरात्रि व्यतीता वै, वायूसूनुर्न चागतः ।
 हे सौमित्रे कथं मोचे, परं दुखं समागतम् ॥१४३
 विलापञ्च प्रभोः श्रुत्वा, वानराः खिन्न मातसाः ।
 निर्गमनाय दुखानां, ते भजन्ति परं प्रभुम् ॥१४४
 महाशोकान्विते काले, वायूसनुर्महाबलः ।
 अपारे दुख संमग्ने, वायुपोत मिवागतः ॥१४५
 तत्र सजीवनीं नीत्वा, सुषेणः समुदार धीः ।
 लक्ष्मणाय प्रदत्वासौ, तं तत्काल मवुध्यत ॥१४६
 प्रसन्ना वानराः सर्वे, रावणो दुखमाप्नुवान् ।
 कुम्भकर्णं गृहं गत्वा, रावणो राक्षसेश्वरः ॥१४७
 विवधैर्दुरुपायैश्च, कुम्भकर्णमजागरीत् ।
 किं कारणञ्च हे भ्रात, मां संवोधि तवान्स्वयम् ॥१४८
 रावणः कुम्भकर्णं वै, सादरेण जगाद च ।
 शूर्पणखा भगिन्याः सः, चिच्छेद कर्णं नासिके ॥१४९
 तस्माच्च कारणाद् वीर, विरोधं तु मया कृतम् ।
 वलान्मया हृता सीता, श्रीरामस्य महात्मनः ॥१५०
 खरदूषण मेधावी, दुर्मुखादिनिशाचरान् ।
 कुमारमक्षयञ्चैव, रामोजघान संगरे ॥१५१
 उत्तिष्ठ वीर हे भ्राता, रामं शीघ्रंरणे जहि ।
 रावणस्य वचः श्रुत्वा, कुम्भकर्णो जगाद तं ॥१५२

ईश्वरस्य कथं द्वेषं, हे भ्रातस्त्वं करोसि भोः ।

साक्षाद्विष्णुस्तु रामोऽसौ, जगतामधि नायकः ॥१५३

सीता साक्षाज्जगन्माता, त्रिलोका नामधोश्वरी ।

विरोध मुभयोः कृत्वा, कथं त्वं सुख मेधसे ॥१५४

अभ्युत्थानाय धर्मस्य, दुष्टानाञ्च वधाय हि ।

प्रादुर्भवति रामोऽयं, सांप्रतं जगती तले ॥१५५

हे भ्रातः सर्व नाशञ्च, स्वयमेव कृतं त्वया ।

लङ्कापुर्या विनाशञ्च, निश्चितं सभविष्यति ॥१५६

युद्धाय ननु गन्तव्यं, प्राप्तव्यं मोचनं मया ।

रामेण मरणं श्रेष्ठ, मितिमे निश्चिता मतिः ॥१५७

मद्यञ्च महिषान् देहि, पिबामि भक्षयामि च ।

प्रबन्धं कुरु हे राजन्, शीघ्रं जिगिभिषाम्यहम् ॥१५८

पीत्वा च मदिरां तीव्रां, सज्जगाम रणस्थले ।

अट्टहासं च कृत्वा वै, स जगर्ज ननाद च ॥१५९

भयदं भीषणं रूपं, दृष्ट्वा च पर्वतोपमम् ।

श्रीरामो वै रमानाथो, निर्जगाद विभीषणम् ॥१६०

हे तात कोयमायाति, भीषणः पर्वतोपमः ।

धरां प्रकम्पयन्नात्र, कालाञ्जन गिरेः समः ॥१६१

रामस्य वचनं श्रुत्वा, तं जगाद विभीषणः ।

अयं राम दया सिन्धो, कालाञ्जनगिरेः समः ॥१६२

भ्राता मे कुम्भकर्णोऽसौ, रणभूमौ समागतः ।

संग्रामे निपुणो योद्धा, कूट युद्धं करोति च ॥१६३

तदा विभीषणो गत्वा, कुम्भकर्णं ननाम वै ।

शुभाशिषं प्रदत्त्वा सौ, भ्रातरं प्रत्युवाच ह ॥१६४

सुजन्म ते यशस्यं वै, राम सेवां करोसि भोः ।

द्वन्द्व युद्धं करिष्यामि, सह रामेण धीमता ॥१६५

मृत्वा मुक्तिमवाप्स्यामि, रामेण परमात्मना ।

द्वन्द्व युद्धम भूतीव्रं, श्रीराम कुम्भ कर्णयोः ॥१६६

कूट युद्धं कृतं तेन, संग्रामे भृशदारुणम् ।
 प्रायुङ्क्त चासुरीं मायां, वर्तमाने रणे स्थले ॥१६७
 एकेनैव हि वाणेन, सर्वा मायां व्यनाशयत् ।
 श्रीरामः परमात्मा वै, शत्रु हन्तुं मनोदधे ॥१६८
 आकर्णं वाणमाकृष्य, कम्भकर्णं जघान सः ।
 देवा दुन्दुभयो, नेदुः व वर्षुः कसुमं दिवः ॥१६९
 रामस्य दर्शनार्थञ्च, सर्वे देवाः समुत्सुकाः ।
 देवर्षि नारदस्तत्र, दर्शनार्थं समागताः ॥१७०
 रामकार्यं प्रशंसन्ति, जयशब्दं वदन्ति च ।
 धन्यवादञ्च दत्वाते, यथा स्थानं विनिर्गताः ॥१७१
 रुरुदुस्तत्क्षणं सर्वे, रावणादि निशाचराः ।
 कुम्भकर्णेहते वीरे, सीदन्ति विलपन्ति च ॥१७२
 इन्द्रजिन्मेघ नादो सौ, युद्धाय च सुसज्जितः ।
 सुसेनां वाहिनीं नीत्वा, संजगाम रणस्थले ॥१७३
 घोर युद्धं तदा कुर्वन्, क्रूरांमायां प्रयुङ्क्तवान् ।
 लक्ष्मणश्च स्ववाणेन, सर्वा मायां ननाश च ॥१७४
 तत्तदा दशनो भूत्वा, जगाम गिरि कन्दराम् ।
 जयार्थं यजनं चक्रे, संजुहाव शिवं मृडम् ॥१७५
 संश्रुत्य यज्ञवृत्तञ्च, विभीषणो जगादतम् ।
 शीघ्रं प्रेषय सेनां वै, मेघनादस्य चाध्वरे ॥१७६
 प्रभो तद्यज्ञ सिद्धं स्था, दजितः सोभविष्यति ।
 रामस्तु बानरीं सेनां, प्रेषया मास सत्वरम् ॥१७७
 गत्वा ते मेघनादं वै, जुह्वान्तं न्याकुलेन्द्रयम् ।
 ददर्शुवानराः सर्वे, तं यज्ञञ्च व्यनाश यन् ॥१७८
 विनष्टं यजनं दृष्ट्वा, मेघनादश्च राक्षसः ।
 सेनां सुसज्जितां नीत्वा, निजगाम रणस्थलम् ॥१७९
 तदा तु लक्ष्मणो वीरो, हनूमानगदस्तथा ।
 शत्रोर्युद्धाय शीघ्रं वै, निर्जग्मुस्ते रणां गणम् ॥१८०

मेघनादस्य रुष्टस्य, ह्यङ्गदस्य महात्मनः ।
 द्वन्दयुद्धमभूत्तीक्ष्णं, द्विरदाविव सांप्रतम् ॥१८१
 धर्मात्मा हनुमान् वीरः, सिंहस्येव जगर्ज च ।
 तयोर्युद्धमभूत् घोरं, तुमुलं रोम हर्षणम् ॥१८२
 हनूमान्तु गदां भीमा; महनच्छत्रु मस्तके ।
 मेघनादः समुत्थाय, वाणाञ्च विचकर्षे हि ॥१८३
 उद्यतो लक्ष्मणो वारः, शत्रोश्च हननाय वै ।
 वभूव कर्कशं युद्धं, लक्ष्मण मेघनाद योः ॥१८४
 दानवीरघातकीं मायां, प्रययोज निशाचरः ।
 लक्ष्मणः स्वेन वाणेन, तां मायां संजहार वै ॥१८५
 वेगेन वाण मा कृष्य, मेघनादं जघान सः ।
 हे रामानुज हे राम, कथितो मृत्यु माप्नवान् ॥१८६
 प्रभो जयेति शब्देन, स्वर्गाद्देवाः प्रशंससुः ।
 इन्द्रादयः प्रसन्नास्तु, ववर्षुः कुसुमं मुदा ॥१८७
 लक्ष्मणञ्च प्रशंसन्ति, सर्वे वानर पुङ्गवाः ।
 शेषांश्च राक्षसान् सर्वान्, वानरान्य हनन्तदा ॥१८८
 ततो रावण राक्षसो, मेघनाद मृते सति ।
 शोकेन रोदनं चक्रुः, माता च विजहौ स्मृतिम् ॥१८९
 विरथं राघवं दृष्ट्वा, सुरेन्द्रो वृद्ध सत्तमः ।
 प्रेषितवान् रथं दिव्यं, श्री रामाय महात्मने ॥१९०
 रावणो वाहिनीं नीत्वा, संग्रामाय समुद्यतः ।
 संस्कृतेन रथेनैव, परमास्त्रेण सज्जितः ॥१९१
 घोराञ्च गर्जनां कृत्वा, संजगात् सुभाहवे ।
 रामं विभीषणः प्राह, हे राम पुरुषोत्तम ॥१९२
 रावणः छद्मपेशी च, रण भूमौ समागतः ।
 तस्य तं वचनं श्रुत्वा, रामो युद्धं समाययौ ॥१९३
 ततस्तु वानराः सर्वे, रणभूमौ समागताः ।
 राम रावण यो युद्धं, तुमुलं रोम हर्षणम् ॥१९४

पैशाचीं तामसीं मायां, प्रयुयोज निशाचरः ।

प्रभुणा स्वेन वाणेन, सर्वामाया विनाशिता ॥१६५

ततः पराजिता दैत्याः, चिन्तामापुश्च दुस्तराम् ।

रूषा सोन्तर्हितो भूत्वा, यज्ञांकर्तुं समागतः ॥१६६

विधाय वेदिका मुग्धां, रावणो राक्षसेश्वरः ।

परं प्रभुं शिवं देव, माजुहावा कुलेन्द्रियः ॥१६७

यज्ञं समारभन्तं तं, श्रुत्वा च राक्षसेश्वरम् ।

श्री रामः प्राहिणोद्दूतान्, यज्ञ भंगाय सत्वरम् ॥१६८

हनुमदादि कीशास्ते, लक्ष्मणेन समन्विताः ।

जग्मुश्च सत्वरं प्राज्ञाः, कृतं यज्ञं व्यनाशयन् ॥१६९

यज्ञ भंगेन संतप्तो, रावणो राक्षसेश्वरः ।

अतिक्रोधातुरः क्रूरो, जगाम रणे सन्निधौ ॥२००

रणे विस्तारयामास, मायां सर्वाञ्च घातकीम् ।

राम एकेन वाणेन, सर्वां मायां व्यनाशयत् ॥२०१

भगनां प्रतिकृतिं सीतां, दर्शयामास तं तदा ।

दृष्ट्वा च मोहितो जातः, श्री रामः पुरुषोत्तमः ॥२०२

परं ज्ञान मुपादाय, तस्य माया ममन्यत ।

द्वन्द्व युद्धं समाभूद्वै, राम रावण योस्तदा ॥२०३

रामो वाणेन तद् वक्रं, सर्वं तस्य चकर्त वै ।

मुखानि किन्तु सर्वाणि, ह्यजायन्त च सत्वरम् ॥२०४

घोर युद्धमभूच्छब्द, दर्शने तु मया वहम् ।

राम रावणयोर्युद्धं, राम रावण यो रिव ॥२०५

मुखञ्च जीवितं दृष्ट्वा, रामश्चिन्तायुतोऽभवत् ।

रामं चिन्ता युतं दृष्ट्वा, तं जगाद विभीषणः ॥२०६

हे प्रभो जगदाधार, श्रीराम रघुनायक ।

अनेनैव प्रकारेण, न मरिष्यति रावणः ॥२०७

अस्य नामौ सुधा चास्ति, ह्यग्नि वाणेन शोषय ।
तदैव मरणं चास्य, निश्चयं संभविष्यति ॥२०८

पंचविंशो विरामः

वचनं चेति संश्रुत्य, रामो राजीव लोचनः ।
परं प्रभुञ्च संस्मृत्य, शत्रुं हन्तुं मनोदधे ॥२०९
एकं त्रिशेन वाणेन, प्राक्षिपच्चैव रावणम् ।
शत्रुं विच्छिद्य ते वाणाः, क्षिप्रं जघ्नुश्च रावणम् ॥२१०
हे राम राम हे राम, वदन् प्राणान् जहौ तदा ।
वरिष्ठान् राक्षसान्हत्वा, रामः शान्तिमुपागमत् ॥२११
प्रसन्ना देवताः सर्वे, नेदुर्दुन्द भयो दिवि ।
तथा जय जया रावः, पुष्प वृष्टिस्तदा भवत् ॥२१२
मन्दोदर्यो महाराज्यो, विक्षिप्तारुदुर्भृशम् ।
लंका च त्वद्विना नाथ, वैधव्यञ्च वयं गताः ॥२१३
रामस्य विमुखा मूर्खाः, प्राप्नुवन्ती दृशी गतिम् ।
सन्मार्गं मेव सेवेत, कुमार्गं न कदापि हि ॥२१४
परेषा मुपदेष्टारो, जनाः सन्ति च भूरिशाः ।
आचरन्ति स्वयं धर्मं, क्वचित्लोके भवन्ति ये ॥२१५
विभीषणं समाहूया, रामः प्रति जगाद हि ।
मृतानां कुरु संस्कारं, यथार्हं विधिना नृप ॥२१६
आज्ञां प्राप्य च रामस्य, संस्कारं भूकरोन्मुदा ।
तिलदानं तथा कृत्वा, व्रतञ्च तद्दिने कृतम् ॥२१७
निहत्य रावणं क्रूरं कामिनं लोकघातकम् ।
आदिदेश हरीन् प्रेम्णा कृतकार्यो रघूत्तमः ॥२१८
वानराः श्रूयतां तावत्, तत्त्वं लोकहितावहम् ।
सदसद्प्राह्यमार्गस्य, सत्यमित्थं प्रमाणकम् ॥२१९

रावणः पण्डितो ज्ञानी, सुयोग्यः समुदार धीः ।
 ज्योतिर्वेत्ता सुशास्त्रज्ञः, शंकरस्य सुसेवकः ॥२२०॥
 राजनीतौ प्रजानीतौ, चतुरः ज्ञानवान् सुधीः ।
 शूरोधीरो रणे वीरः, सर्वं कार्यं विशारदः ॥२२१॥
 राक्षसानां कुल श्रेष्ठो, दानी मानी च वाक्पटुः ।
 वीराग्रणीस्तु तेजस्वी, सत्रेतायां सुनायकः ॥२२२॥
 चासीद्दश मुखो राजा, प्रजापालन तत्परः ।
 स्वर्णं लंकापुरी यस्य, शत्रु जेता धुरंधरः ॥२२३॥
 किन्तु चासौ दुराचारी, सन्त गो द्विज हिंसकः ।
 परेषां द्रव्य हर्ता वै, स्वजनानां विनाशकः ॥२२४॥
 पीडकः सर्वं लोकानां, राक्षसानां सदाग्रणीः ।
 स रावणः सदाधर्म, ममन्यत निशाचरम् ॥२२५॥
 चौरेणाप हृता तेन, विश्वमाता सुजानकी ।
 विष्णु द्वेषी च पाखण्डी, छद्मी सज्जन घातकः ॥२२६॥
 वेदधर्म मजानन् सन्, सदा स्वार्थं परायणः ।
 कामी क्रोधी तथा लोभी, मदमत्तोऽजितेन्द्रियः ॥२२७॥
 प्रेक्षध्वं वानरायूय, मेवं भूतः स रावणः ।
 साक्षरा विपरीताश्चेद्, राक्षसा नहि संशयः ॥२२८॥
 हनुमानंगदौ वोरौ, तथा च लक्ष्मणं प्रति ।
 शीघ्रं गच्छत लंकां वै, विभीषणाय धीमते ॥२२९॥
 राज्यं प्रदेहि हे भ्रातः, प्रत्युवाच परं प्रभुः ।
 आज्ञां संप्राप्य ते सर्वे, यथार्हं विधिना मुदा ॥२३०॥
 राज्यं दत्त्वा समाजग्मुः, शीघ्रं श्रीराम सन्निधौ ।
 हनुमन् गच्छ लंकाञ्च, वैदेह्या वृत्तमानय ॥२३१॥
 आज्ञां श्रुत्वा कपीशो वै, वैदेहीं प्रत्ययात्तदा ।
 गत्वा देवीं नमस्कृत्य, प्रोवाच जनकात्मजाम् ॥२३२॥
 कुशलञ्चास्ति रामो वै, लक्ष्मणेन समन्वितः ।
 तथा च वानराः सर्वे, कुशलाः सन्ति भूरिशाः ॥२३३॥

हे देवि कुशलं काञ्चे, भवत्या जनकात्मजे ।
 रावणस्य वधं कीश, सर्वं लोकं सुखा वहम् ॥२३४
 क्षिप्रञ्च दर्शनं काञ्चे, श्रीरामस्य महात्मनः ।
 इति सीता नता तत्र, हनुमन्त मुवाच हि ॥२३५
 वार्तां संगृह्य पिङ्गान्नः, श्रीरामं निर्जगाद वै ।
 हे प्रभो सत्वरं सीता, दर्शनाय समुत्सुका ॥२३६
 कृपां कृत्वा जगन्नाथ, दर्शनं देहि सुव्रत ।
 हनूमतो वचः श्रुत्वा, प्रत्युवाच विभीषणम् ॥२३७
 शीघ्रं चानय सीतां वै, नृपोत्तम विभीषण ।
 अङ्गदादि सुकीशास्ते, सीतां नेतुं समागताः ॥२३८
 ब्रह्मामरीचि रुद्रेन्द्राः, सर्वे देवाश्च संयुताः ।
 समागताः प्रभुं रामं, स्तुतिं चक्रुर्मुदान्विताः ॥२३९
 विश्वम्भर दयासिन्धो, हे विश्वेश नरोत्तम ।
 लोकानां स्वस्तिदं विष्णुं, त्वां नतास्मः प्रभोवयम् ॥२४०
 स्थित्युद्धव लयं कर्ता, नादिरादि कृद व्ययः ।
 सर्वं कष्टं प्रहर्त्ता च, त्वां नतास्मः प्रभो वयम् ॥२४१
 त्रैलोक्य भयदं क्रूरं, रावणं राक्षसेश्वरम् ।
 तं हन्तारं प्रभुं रामं, वन्दामहे नरोत्तमम् ॥२४२
 वधेन राक्षसेन्द्रस्य सुखिनः सन्तु ते सुराः ।
 वधेन दुष्ट दैत्यस्य, कुशलाः सन्तु भूसुराः ॥२४३
 क्रूरस्य शासनादत्र, त्रयो लोकाश्च कम्पिरे ।
 वधं राक्षस राजस्य, सुष्ठु कार्यं कृतं प्रभो ॥२४४
 धर्मं संस्थापनार्थाय, दैत्यानाञ्च वधाय हि ।
 आविभवसि लोकेस्मिन्, नररूपेण वै प्रभो ॥२४५
 शक्रस्तु राम ननायां, प्रववर्ष सुधां मुदा ।
 जीविता वानराः सर्वे, पापिनो न तु राक्षसाः ॥२४६
 विभीषणा दयो भक्ताः, सीतां नीत्वा तदागमन् ।
 सीतां दृष्ट्वा सुधो रामः, परं दुःखं मुपागमत् ॥२४७

हे सीते कमलाक्षित्वं, वहेनश्च साक्षिणं कुरु ।
 रामस्य वचनं श्रुत्वा, ज्वलिताग्रौ विवेश तौ ॥२४८
 आविर्भूतस्तदाग्निर्वै, विशुद्धां जनकात्मजाम् ।
 प्रददौ स्वकरे धृत्वा, श्री रामाय महात्मने ॥२४९
 प्रभोर्जयेति वाक्यं ते, सदेवासुर मानवाः ।
 जगदुः सत्वरं सर्वे, पुष्प वृष्टिस्तदा भवत् ॥२५०
 विशुद्धां विमलां दृष्ट्वा, रामोऽत्यन्त प्रहर्षितः ।
 मर्यादा पुरुषो रामो, वामे तां जगृहे प्रभुः ॥२५१
 स्तुतिं प्रमुदिताः कृत्वा, विस्मितास्तु सुरोत्तमाः ।
 शिव ब्रह्मादयः सर्वे, स्वं स्वं स्थानं ययुर्मुदा ॥२५२
 हे विभीषण चाद्यैव, साकेतञ्च ब्रजामि हि ।
 मां संस्मृत्य सदा राजन्, राज्यञ्च संभरस्व भोः ॥२५३
 विभीषणः परं प्रेम्णा, पुष्पकञ्च निनाय वै ।
 कर वद्धेन तं रामं, प्रार्थयामास सन्नतः ॥२५४
 भवता सह गच्छामि, साकेतं दर्शनाय च ।
 पुष्पकञ्च समारुह्य, सर्वे जग्मुर्दग् दिशि ॥२५५
 महासेतुं प्रभुर्दृष्ट्वा, सीताञ्च प्रत्युवाच सः ।
 सेतुबन्धं प्रिये सीते, पश्य रम्यं मनाहरम् ॥२५६
 अत्र रामेश्वरं देवं, स्थापयामास वै मुदा ।
 तत्र देवं नमस्कृत्य, पूजयामास तं शिवम् ॥२५७
 वाल्मीकिञ्च भरद्वाजं, गोतमं दर्शयन्तदा ।
 सर्वाञ्च मुनि पूज्यान् ह, पूजयन्वै जगाम सः ॥२५८
 संप्राप्ता यमुना कृष्णा, तदा तां दृष्ट्वान्मुदा ।
 भागीरथीञ्च दृष्ट्वाहि, सर्वे मोद मुपागताः ॥२५९
 पुष्पकादवतीर्त्वाच, गंगा स्नान मकुर्वत ।
 पूजां चकार पूर्वोक्तां, यथार्हं विधिना तथा ॥२६०
 भागीरथ्या वरा सीता, स्तुतिचक्रे मुदान्विता ।
 जह्म कन्ये नमस्तुभ्यं, गगे पाप हरे शुभे ॥२६१

सर्वं कार्यञ्च पूर्णं स्यात्, सफलं मे मनोरथम् ।

तीर्थराजं नमस्कृत्य, रामो राजीव लोचनः ॥२६२

पुष्पकञ्च समारुह्य, साक्रेतं समुपागतः ॥

हनुमन्त्वं सुयोग्योसि, शृणुस्व वचनं मम ॥२६३

वटुरुपञ्च धृत्वा हि, साक्रेतं प्रति गच्छमोः ।

समाचारं पविज्ञाय, ह्यागच्छ मम सन्निधौ ॥२६४

रामस्या गमनं श्रुत्वा, निषादस्तु मुपागमत् ।

रामस्य दर्शनं कृत्वा, परं हर्षं समाप्नुवान् ॥२६५

रामं दूर्वादल श्यामं, पीत कौशेय वाससम् ।

सीता पतिं प्रभुं बन्दे, सर्वेशं मोक्षदायकम् ॥२६६

लंका काण्डं परं रम्यं, भक्तानामिष्टदं शुभम् ।

यः पठेत् प्रातरुत्थाय, सर्वत्र विजयी भवेत् ॥२६७

गुरुं बन्दे मान्यं विविध भुवनानां हितकरम् ।

प्रभो विद्यादातस्तव शुभदया लोक सकले ॥

प्रभावन्तो जाताः सकल जगतां कोविद वराः ।

प्रतिष्ठा वन्तस्ते, निखिल बुबुधाः संसृति तले ॥२६८

षड्विंशो विरामः

इति श्री पं० रामविशाल शास्त्रि विरचिते श्रीरामचरिते

लङ्काकाण्डम् समाप्तम्

श्री गणेशायनमः

अथ उत्तरकाण्डम् प्रारभ्यते

विशालं भालं तं सुभग सुख पालं सुयशकम् ।
भजे योगाधीशं युगसुख करं संकट हरम् ॥
प्रभुं ध्येयं ज्ञेयं सुधृत नवनीतं करतले ।
सदा गोपी बालं विकसित मुखं पङ्कज निभम् ॥१
रामं राजीव नेत्रं रविकुल तिलकम् राघवेशं रमेशम् ।
सीता सौमित्रि युक्तं सकल मलहरं सर्वदा सुप्रसन्नम् ॥
ब्रह्माद्यं ब्रह्मबन्धं विविध मुनि नुतं ब्रह्मवेद्य स्वरूपम् ।
वन्दे ब्रह्माण्ड बीजं विधिहर जनकं वन्दनीय वरेण्यम् ॥२
अवधेर्वनवासस्य, दिन मेक मविद्यत ।
एवं त्व चिन्तयन्पौराः, रामस्य परमात्मनः ॥३
अयोध्या वासिनः सर्वे, चिन्तया व्याकुलेन्द्रियाः ।
रामागमं प्रतोक्षन्तो, राम दर्शन लालसाः ॥४
अवधिं वीक्ष्य चायान्तीं, श्रीरामस्य महात्मनः ।
ध्यायन्तस्ते प्रभुं रामं, निन्युर्वै वासरान् शुचा ॥५
भरतश्चिन्त यन्प्राज्ञः, रामचन्द्रं त्वहनिशम् ।
जगाद व्याकुलः प्रेम्णा शोकेन पुरवासीनम् ॥६
अद्यावधि समाप्ता चेत्, रामोनैव समागतः ।
किं करोमि क्व या स्यामि, प्रभुनैव समाययौ ॥७
किन्तु मे दक्षिणो बाहुः, प्रस्फुरत्यधुनैवहि ।
राम संदर्शनार्थाय, चिन्ता मे तु गरीयसी ॥८
इत्येवं कल्पनां कुर्वन्, भरतो परमातुरः ।
नन्दि ग्रामे समासीनः, परं प्रभुम चिन्तयत् ॥९
वटुरुपं समाधाय, हनुमान् मारुतात्मजः ।
तस्मिन्नेव कपिः काले, नन्दि ग्रामं समाययौ ॥१०

चानप्रस्थ ब्रते निष्ठं, भूषितं वल्कलाम्बरम् ।
 राम तुल्यं तपो वेशं, जटिलं भरतं मुदा ॥११
 ज्ञान वैराग्य संयुक्तं, तपो योग समन्वितम् ।
 ध्यायन्तं हृदि रामञ्च, ददर्श हनुमान् कपिः ॥१२
 नमन्तं तं हनूमन्तं, जगाद भरतस्तदा ।
 को भवानिह संप्राप्तः, कथं मां विरहा कुलम् ॥१३
 वटो वद सविस्तारं, शुभागमन कारणम् ।
 रामस्या गमनं कांक्षे, किं वा दृष्टं श्रुतं त्वया ॥१४
 भरतस्य वचः श्रुत्वा, जगाद पवनात्मजः ।
 रामेण प्रेषितो दूतो, हनूमानस्मि वानरः ॥१५
 धर्मस्या म्युदयं कृत्वा, नाशयित्वा च राक्षसान् ।
 सुभक्तेभ्योऽभयं दत्वा, सोद्यास्त्यागतवान् प्रभुः ॥१६
 लक्ष्मणो राम सीता च, वानरेण समन्विताः ।
 आगच्छन्ति हि साकेतं, चाद्यैव भरतोत्तम ॥१७
 हनूमतो वचः श्रुत्वा, प्रत्यूचे भरतो मुदा ।
 धन्योसि भक्तयोग्योसि, चाग्रगण्योसि भूतले ॥१८
 त्वत्समो नास्ति पुण्यात्मा, भक्तश्च त्वत्समो नहि ।
 एतादृशीं शुभां वेलीं, न प्राप्स्यामि कदाचन ॥१९
 हे भक्त हनुमन्तुभ्यं, प्रणमामि पुनः पुनः ।
 एतादृशं तु सन्देशं, मम कर्णं रसायनम् ॥२०
 सन्देशेन कृतज्ञोस्मि, सदा मान्योसि हे कपे ।
 परमानन्द संभ्रान्तो, भरतो मुदमाप च ॥२१
 प्रणम्य भरतं वीरो, मारुति भीम विक्रमः ।
 नीत्वा प्रभोर्हि सदेशं, गतवान् राम सन्निधौ ॥२२
 नन्दि ग्रामे समासीनो, भरतो मुनि सत्तमः ।
 समागतं प्रभुं वीक्ष्य, साकेतं भरतो गतः ॥२३
 प्रवेशं प्रथमं दृष्ट्वा, सर्वे नागरिका जनाः ।
 समुत्सुकास्तु संजाताः, रामागमन शंकया ॥२४

हर्षितो भरतो वीरो, गुरोर्गृहं समागतः ।
 गुरुं प्रणम्य साष्टाङ्गं, राम वार्तां जगाद हि ॥२५॥
 वार्तां श्रुत्वा वशिष्ठश्च, शुभाशिषं प्रदत्तवान् ।
 प्रत्यानेतुं प्रियं रामं, शीघ्रं संचलनं शुभम् ॥२६॥
 पूजा द्रव्यं च संगृह्य, ह्यलं कृत्य पुरीं मुदा ।
 सर्वैः संभूय हे तात, गमनायं प्रयत्नतः ॥२७॥
 प्रदत्त्वा मुनिरित्याज्ञां, गमनाय समुद्यतः ।
 निदेशं भरतः प्राप्य, मन्त्रिणं प्रत्युवाच ह । २८॥
 प्रभोश्च स्वागतार्थं वै, शीघ्रं कुरुष्व साधनम् ।
 अयोध्यां भूषयित्वा च, सज्जयित्वा चतुष्पथम् ॥२९॥
 पूजा द्रव्यं गृहीत्वा ते, नागरामन्त्रि सत्तमाः ।
 वामदेवो वशिष्ठश्च, भरतादि सुमातरः ॥३०॥
 पुष्पाणि फल माल्यानि, दधि क्षीर घृतानि च ।
 सर्वोपस्कर संयुक्ताः, प्रत्याने तुं समागताः ॥३१॥
 ललना श्रेष्ठि वर्गाश्च, रामं ने तुं समाययुः ।
 साकेताद्ध नुमान् वीरो रामं प्रति सवाययौ ॥३२॥
 अथातः सत्वरं प्राज्ञा, रामस्यसंमुखोऽभवत् ।
 ववन्दे चरणौ प्रेम्णा, स्वामिनं प्रत्युवाच सः ॥३३॥
 श्रीमत स्तुल्य रूपं वै, चिन्तितो दर्शनाय ते ।
 त्व द्विजान् सुखं लेभे, भरतः परमातुरः ॥३४॥
 शुभागमं प्रतीक्षन्सन्, चन्द्राय चातको यथा ।
 वार्तां तव समाकर्ण्य, भरतो मुदितोऽभवत् ॥३५॥
 भरतस्य शुभां वार्तां, श्रुतवान् कपिनः यदा ।
 परमानन्द संजातो, रामो राजोव लोचनः ॥३६॥
 सर्वान् प्रति समुद्दिश्य, राघवो निर्जगाद हि ।
 हे वानरास्तु शृण्वध्वं, पुरीमम समागता ॥३७॥
 अयोध्या शोभना रम्या, प्रेयसी जन्मभूमिम ।
 तीरेषु निमला धारा, सा सरयू सुशोभते ॥३८॥

पुष्पिताः कलिता वृक्षाः, पङ्क्ति वद्धाश्च भूरिशाः ।

नद्यास्तटे सुशोभन्ते, विलसन्ति वकास्तटे ॥३६॥

दृष्ट्वा सुवानराः सर्वे, परं हर्षं मुपागताः ।

प्रविष्टा नगरं पूज्याः, पुष्पकृते ह्यवातरन् ॥३७॥

श्रीरामः परमात्मा वै, पुष्पक निदिदेश च ।

हे पुष्पक समागच्छ, शीघ्र मिन्द्रस्य सन्निधौ ॥३८॥

समुत्साही रघुश्रेष्ठः, संददर्श गुरुं प्रभुम् ।

वामदेवं वशिष्ठञ्च साष्टांगं प्रणनाम सः ॥३९॥

रामञ्च भरतो दृष्ट्वा, साष्टांगं हि ननाम तम् ।

उत्थाप्य गाढमालिङ्ग्या, सिसिञ्च नैत्र जैर्जलैः ॥४०॥

शुभाशिषं च दत्त्वा हि, शत्रुघ्नममिहत्प्रभुः ।

साष्टांगं ने मतुः सीतां, शत्रुघ्नो भरतस्तथा ॥४१॥

लक्ष्मणो भरतं शीघ्रम्, साष्टांगं च ननाम वै ।

शुभाशिषं च लब्ध्वा वै, सर्वे मुमुदिरे जनाः ॥४२॥

श्रीरामो लक्ष्मणश्चैव, सीता जनक नन्दिनी ।

मातुः दृष्ट्वा च ते सर्वे, प्रणमुः परमोत्सुकाः ॥४३॥

आशिषं मातरोदत्त्वा, सिसिञ्च नैत्र जैर्जलैः ।

क्षणे नैत्र प्रभूरामो, मिलनं चाकरोन्मुदा ॥४४॥

तदासु मातरः सर्वा, सीताञ्च जगदुर्मुदा ।

वर्धते तत्र सौभाग्यं, यावच्चन्द्र दिवाकरौ ॥४५॥

रघुनन्दन रामोसौ, प्रोवाच वानरान्प्रति ।

श्रीगुरोः कृपया श्रेष्ठाः, शृणुध्वं वानरोत्तमाः ॥४६॥

सर्वाणि मे सुकार्याणि, दुष्टानां हननानि च ।

रावणस्य वधादीनि, वभूवुः सफलानि हि ॥४७॥

तदा नागरिकाः सर्वे पूजां चक्रुर्मुदान्विताः ।

श्री रात्रवं रामोपेतं, सिसिञ्चुः पुष्प सान्धतैः ॥४८॥

रामस्य चक्रिरे पूजां, मार्गाणाञ्च चतुष्पथे ।

मेरी शल्व निनादैश्च, रामोऽयोध्यां विवेश हि ॥४९॥

प्रासादं शोभनं रामः, प्रविवेश मुदान्वितः ।
 शृणुष्वभो द्विज श्रेष्ठा, मुनयो मन्त्रिणस्तथा ॥५३
 भरत श्रूयतां विद्वन्, शुभं राज्याभिषेचनम् ।
 शीघ्र मेव प्रदातव्यम् रामाय परमात्मने ॥५४
 आहरध्वं सुसंभारान्, रामराज्याभिषेचने ।
 पूजा द्रव्यं समानीय, कुरुध्वं मा बिलम्बितम् ॥५५
 गुरोराज्ञां तु संश्रुत्य, मन्त्रिणस्ते च चारकाः ।
 राज्याभिषेक संभारान्, युयुजुस्ते प्रहर्षिताः ॥५६
 योग्यैर्महानुभावैस्तैः, यथोक्त विधिना मुदा ।
 श्रीरामं स्नापयित्वा च, वेद मन्त्रैः सुवैदिकैः ॥५७
 पूजा विधि विधानेन, रामचन्द्रोऽभिषेचितः ।
 मृदङ्गादीनि वाद्यानि, नेदूराज्याभिषेचने ॥५८
 आकाशात् पुष्प वर्षाभूत्, ते सर्वे च प्रहर्षिताः ।
 अभिषेकञ्च पश्यन्तः, प्रशशं सुमुदान्विताः ॥५९
 पुरोधास्तु वशिष्ठो वै, ब्रह्मज्ञानी महामुनिः ।
 रामस्य तिलकं चक्रे, राम राज्याभिषेचने ॥६०
 रामचन्द्रो महाभागः, सीता देवी यशस्विनी ।
 शुशुभाते समासीनौ, शचीन्द्ररिव चासने ॥६१
 दिवि दुन्दुभयो नेदु, रभूज्जयध्वनिस्तदा ।
 मांगलिकानि कार्याणि, बभूवुरभिषेचने ॥६२
 सीता विभाति वामाङ्गे, श्री रामस्य शुभासने ।
 दृष्ट्वां सुमातरः सर्वा, ममुदुः परमोत्सुकाः ॥६३
 ननृतुश्च वरा नार्यः, राम राज्य शुभोत्सवे ।
 ब्राह्मणेभ्यश्च दानानि, संददुर्हि प्रहर्षिताः ॥६४
 तदा ब्रह्मा च रुद्रश्च, मुनयो दर्शनोत्सुकाः ।
 समाजग्मुर्हि साकेतं, राम राज्याभिषेचने ॥६५
 हैमं सुचामरं क्षत्रं, लक्ष्मणो भरतस्तथा ।
 जगृहिरे प्रहर्षेण, सुग्रीवादिसुवानराः ॥६६

वशिष्ठः प्रथमेः क्षप्रं, तिलंक कृतवान्मुदा ।
 चक्रुश्च मुनयो देवा, आतरो मातरस्तथा ॥६७
 वन्दि रूपेण ये वेदाः, स्तवनाय सभागताः ।
 राज्यासने समासीनं, सीता पतिं नरेश्वरम् ॥६८
 वेदा विनम्र भावेन, स्तोतुं समुपचक्रिरे ।
 निर्गुणं परमानन्दं, सत्य मूर्ते नरोत्तम ॥६९
 निरीहं निर्विकारञ्च, नमामो भुवनेश्वरम् ।
 अनन्तञ्च हनादिञ्च, सत्तामात्रं तुरीयकम् ॥७०
 ब्रह्माण्डस्यैक बीजं हि, मर्यादा पुरुषोत्तमम् ।
 स्रष्टि स्थितिलयं कारं, विष्णुरूपं भजे मदि ॥७१
 धर्मस्या भ्युदयार्थाय, प्रादुर्भूतोसि भूतले ।
 वन्दा महे प्रभो राम, त्वां वयं शरणं गताः ॥७२
 दुष्टानां नाशकं देवं, सज्जना नां हितं करम् ।
 आर्तानां सुखदं श्रेष्ठं, भजामो वै तगो निधिम् ॥७३
 ये भजन्ति हि भक्त्या त्वां, प्राप्नुवन्त्युत्तमां गतिम् ।
 इह लोके सुखं भुक्त्वा, परत्र मोक्ष माप्नुयुः ॥७४
 स्तुतिं कृत्वा प्रभुं नत्वा, वेदास्तु निलयं गताः ।
 ब्रह्माच शंकरो देवः, चक्रोराम स्तुतिं मुदा ॥७५
 सीतापते जगन्नाथ, जगत्कारण कारक ।
 रावणस्य च दुखेन, त्रयोलोकाश्च कम्पिरे ॥७६
 तैस्त्रां वधात्तु हे राम, जगत् स्वस्थ तमोऽभवत् ।
 यदा धर्मस्य हानिःस्य त् जायन्ते राक्षसा यदा ॥७७
 यदा पापयता लोका, यदा वृत्तिर मानुषी ।
 जगद्धिताय हे विष्णो, त्व मुदेसि तदैव भोः ॥७८
 निर्गुणञ्च निराकारं, निरालस्यं, निरापदम् ।
 निर्व्वन्दं सगुणाकारं, निर्भयञ्च निरामयम् ॥७९
 दुष्टानां ध्वंसकं रामं, सज्जनानाञ्च रक्षकम् ।
 भक्तानां शान्तिदं वन्दे, धर्म संस्कृति पालकम् ॥८०

त्रेतायां समनु प्राप्ते, प्रभो तव परंतप ।
 सर्वा ग्लानिः प्रयातासा, युगः स्वस्थ तमोस्ति सः ॥८१
 राज्यासने समासीनं, लोकाना मुपकारकम् ।
 सीता पतिं प्रभुं रामं, तं त्रेता युग नायकम् ॥८२
 कीश सेना सहाय्येन, रावणस्य विनाशकम् ।
 मर्यादा पुरुषं वन्दे, त्वामहं शरणं गतः ॥८३
 देवता मुनयः सर्वे, स्वं स्वं स्थानं ययुर्मुदा ।
 तदा सुमातरः प्रेम्णा, परं हर्षं मुवागताः ॥८४
 मित्राणि वानरान् श्रेष्ठान्, रामचन्द्रः समाह्वयत् ।
 यूयं वीराः शृणुध्वं वै, प्रयात भवनं मुदा ॥८५
 कार्योऽणि मे च सर्वाणि, युस्माभिः सफलानि हि ।
 कृतानि च परं प्रेम्णा, ना नृण्यं तु भवानि भोः ॥८६
 व्यायन्तो माञ्च धीमन्तः, प्रापयन्तु त्वं हर्निशम् ।
 वस्त्रैश्चामूषणैः शुभ्रैः, महाहर्षं हर्षिताः प्रभुः ॥८७
 अंगदञ्चैव सुग्रीवं, निषादञ्च विभीषणम् ।
 जाम्बवन्तं नलं नीलं, मभूषयत् स्वयं मुदा ॥८८
 श्रुत्वानुज्ञां हि रामस्य, सुग्रीवादि सुवानराः ।
 परं प्रभुं नमस्कृत्य, प्रत्युवाचांगदाः कपिः ॥८९
 हे प्रभो मे पिता तुभ्यं, मां समर्प्य तदा मृतः ।
 कथं भवन्तु वै रूप्यं, मेवं वदसि हे प्रभा ॥९०
 अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा, रामो राजीव लोचनः ।
 परं हर्षेण संमग्नः, सिसिञ्च नैत्र जैर्जलैः ॥९१
 गाढमालिङ्ग्य तान् सर्वान्, संबोध्य सुधयागिरा ।
 पस्पर्श चांगदं प्रेम्णा, ह्याज्ञापयत् कर्पीस्तदा ॥९२
 विरहेणैव संखिन्नाः, रामस्य वानरोत्तमाः ।
 राम मेव हि पश्यन्तः, तेगमनाय नोद्यताः ॥९३
 पुनः संबोध्य तान् रामः, परं ज्ञानेन वै मुदा ।
 गाढमालिङ्ग्य सन्तोष्य, सुग्रीवादीन् व्यसर्जयत् ॥९४

पुनः पुनः नमस्कृत्य, श्री रामं पुरुषोत्तमम् ।
 कथं चिदपि ते कीशाः, किष्किष्वां प्रस्थिताः शुचा ॥६१
 कीशैः साकं हनूमान्वै, प्रेषणाय समागतः ।
 अंगदो निर्जगादैवं, प्रत्यागमे हनूमतः ॥६२
 कारयस्व प्रभुमेत्वं, स्मरणं वायुं नन्दन ।
 साष्टगञ्च प्रणामं हि, कथयस्व महाकपे ॥६३
 प्रार्थये करवद्धं त्वां, संस्मारय प्रभुं सदा ।
 निषादं गाढमालिङ्ग्य, रामचन्द्रो व्यसर्जयत् ॥६४

सप्तविंशो विरामः

रामे राज्ये समाधिष्ठे, त्रयो लोकाः प्रहर्षिताः ।
 रोगाश्च सकला नष्टाः, चाधयो व्याधयस्तथा ॥६५
 वैरभावश्च सन्त्यज्य, जनाः सर्वे सुखा वहाः ।
 अमोदन्त हृदीप्यन्त, राम राज्याभिषेचने ॥६६
 वर्णाश्रम व्यवस्थासीत्, सदा वेद रता जनाः ।
 न रोगं चभयं क्वपि, शोक मोहं न चाधयः ॥६७
 दैहिकः भौतिकास्तापा, दैविकादिविघातकाः ।
 राम राज्ये जनान् सर्वान्, नावाधन्त कदाचन ॥६८
 मन्यमानाः प्रजाधर्म, गतानुगतिका जनाः ।
 स्वप्ने नाचन्त यन्माप, दुराचारञ्च नैव हि ॥६९
 राज्ये ये च नरा नार्यः, राम भक्तौ रताः सदा ।
 रामस्यैव सदा चारे, तल्लीना जनता मुदा ॥७०
 कुमृत्युश्चाल्प मृत्युर्वै, नावर्तत कदापि हि ।
 पितुरग्रे न पुत्राहि, नाम्रियन्त कदाचन ॥७१
 ललना राम राज्ये च, वैध व्यनाप्तुवन्कदा ।
 आरोग्याश्च सदा लोकाः सुन्दराः सुमनोहराः ॥७२

न दरिद्रा न मूर्खाश्च, नासञ्ज हीन लक्षणाः ।
 रामे राज्ये समाधिष्ठे, नाभवन् दुखिनो जनाः ॥१०७
 चतुरा गुणिनो योग्याः सर्वे धर्म रता नराः ।
 सुयोग्याश्च नरानार्यो, विप्राणां षड् सेवकाः ॥१०८
 एकपत्नी वृता लोका, ललनाश्च पतिव्रताः ।
 उदार चरिता नम्रा, श्वासन् परोप कारिणः ॥१०९
 कृषीवलाः सुखासीनाः, क्षेत्रं कृषन्ति सर्वदा ।
 न तेषां जलजं कष्टं, सदान्नोत्पत्ति हेतवे ॥११०
 आसीत्तु कृष्ट पच्या भूः, सपुष्प फल पादपाः ।
 स्याभाविकञ्चविद्वेषं, तत्त्यजुः पशवस्तदा ॥१११
 मन्दः सुगन्धितो वायुः, शीतलः प्रावपत्तदा ।
 लता वृक्षाश्च गावो वै, फलं दुग्धं ययाददुः ॥११२
 लोकेभ्यो जीवमात्रेभ्यो, मेघाश्च सरितो हृदः ।
 प्राददुश्च यथा कामं, पवित्रं निर्मलं जलम् ॥११३
 पङ्कजैश्च सुपुष्पैश्च शोभन्ते सरितोहृदः ।
 सागरास्तु सुमर्यादां, ह्यपालयन् दिनं दिनम् ॥११४
 प्रजायै तु यथेच्छं वै, चारुचन्द्र दिवाकरौ ।
 स्वं स्वं च शीतलं तापं, प्रादत्तां वै त्वहर्निशि ॥११५
 सीता देवी महाराज्ञी, श्री रामस्य महात्मनः ।
 नियुक्ते सति भृत्यानां, दास्पञ्चैवा करोत् स्वयम् ॥११६
 राम सेवां सदा कुर्वन्, भरतादि सुबान्धवाः ।
 प्रभोः सेवाञ्च कुर्वन्तः, कृत कृत्याश्च मेनिरे ॥११७
 हर्षिता नागराः सर्वे, राम राज्याभिषेचनात् ।
 त्रेता युगस्तु हे शिष्य, सत्ययुग समोऽभवत् ॥ ११८
 रामस्य भ्रातरः सर्वे, द्वौ द्वौ पुत्रौ ह्यजोजनान् ।
 प्रातः ब्राह्मे समुत्थाय, रामो रागीव लोचनाः ॥११९
 स्नात्वा च सरयू नद्यां, ब्रह्मध्यानं सदा करोत् ।
 वशिष्ठात्तु पुराणानां, कथाञ्चैवाशृणोन्मुदा ॥१२०

सनकादि कुमारास्ते, दर्शनाय समागताः ।
सर्वे रामं नमस्कृत्य, चक्रिरेऽस्तुवनंकदा ॥१२१॥

हे प्रभो करुणाधार, जगन्नायक राघव ।
राक्षसानां विनाशात्तु, सर्वे लोकाः प्रहर्षिताः ॥१२२॥
तव राज्य स्थितौ काले, ते कल्याण मवाप्नुयुः ।

हे प्रभो विश्व कल्याण राक्षसानां विनाशक ॥१२३॥
धर्म संस्थापनार्थाय, प्रादुर्भवति भूतले ।
विष्णु रूपं प्रभो राम, त्वां वयं शरणं गताः ॥१२४॥

इति रामं नमस्कृत्य, कुमारा भवनं गताः ।
गतेषु च कुमाराणां, वायु सन्नुर्महावलः ॥१२५॥
रामचन्द्रं घनश्यामं, पप्रच्छ विनयान्वितः ।

यद्याज्ञां हे प्रभु श्रेष्ठ, भरतः प्रष्टुमिच्छति ॥१२६॥
हे कपे त्वं विजानासि, मत्स्वभाव बहु ज्ञताम् ।
हृदयं भरतो मेऽस्ति, तस्य च हृदयं त्वहम् ॥१२७॥

गृहात्वाग्निं वचः श्रुत्वा, भरतः प्रत्युवाचताम् ।
प्रभो धाष्टुं येन पृच्छामि, सन्तस्य किञ्च लक्षणम् ॥१२८॥
असन्तस्य हि किञ्चास्ति, शीघ्रं ब्रूहि महाव्रत ।
लक्षणानि च सन्तस्य, शास्त्रेषु गदितानि हि ॥१२९॥

कुठारस्तु तरुं दिव्यं, चन्दनं परिक्रन्तति ।
कुठारं वासित कृत्वा, राजते मूर्ध्नि चन्दनः ॥१३०॥
अग्निनैव परं तापं, कुठारः सहते भयम् ।
असन्तस्य च सन्तस्य, भयं यशो विचिन्तय ॥१३१॥

सर्वेषु चैव भूतेषु, दयां कुर्वन्ति साधवः ।
दीनेषु मृदु चिन्तास्तु, मानिनो न भवन्ति हि ॥१३२॥
मनसा वचसा तात, कर्मणैव समादरम् ।
मां भक्तिञ्च प्रकुर्वन्ति, निर्मां हिनस्तु सज्जनाः ॥१३३॥

मानं सर्वेषु कुर्वन्ति, विना मोहेन चेतसा ।
सदा सरलता चित्ते, मैत्री शीतलता तथा ॥१३४॥

धर्मे द्विजे प्रभौ भक्तिः, मम नाम परायणाः ।
 शमेदमे रता नित्यं, यमेनीतौ तथैव च ॥१३५
 नियमे निरता नित्यं, वदन्ति परुषं नहि ।
 गुणानाञ्च सुखानाञ्च, पुञ्जोभूताः सदैव च ॥१३६
 निन्दा स्तुतिं न शृण्वन्ति, ज्ञानिनश्च भवन्ति हि ।
 वेद वाद रता नित्यं प्रोक्तमाः सन्त कीर्तिताः ॥१३७
 सन्तस्य लक्षणं प्रोक्तं, मसतो लक्षणं शृणु ।
 खलानां संगतिं स्तात, सर्वदा दुःख दायिनी ॥१३८
 परछिद्रं हि पश्यन्ति, दुर्जनास्तु निरन्तरम् ।
 गोपयन्ति च छिद्रान् स्वान्, ख्यान्ति छिद्रान् परानपि ॥१३९
 खलेन सह रागञ्च, वरञ्चैव कदापि हि ।
 स्व शुभेच्छुर्जनः कश्चित्, संगं नैव तु कारयेत् ॥१४०
 यथांगारः करस्पर्शात्, सद्यस्तापं ददाति वै ।
 शीतत्वेन करं कृष्णं, दुष्करो तीव्रं दुर्जनः ॥१४१
 कठिना हृदयाः सन्ति, निर्दया धार चिन्तकाः ।
 हर्षन्ति पर निन्दायां, प्रज्वलन्ति परोदयात् ॥१४२
 कामिनः क्रोधिनः सन्ति, कुटिलाः कपटान्विताः ।
 दम्भ लोभ समा युक्ता, स्तेच्छा धूर्ता मदान्विताः ॥१४३
 कृतघ्नाः सन्ति, वाचाटा, स्तेमृषा वादिनः खलाः ।
 अकारणे च वैरं वै, सदा कुर्वन्ति दुर्जनाः ॥१४४
 मन्द हास्येन भाषन्ते, वाणीञ्च मधुरोत्तमाम् ।
 हृदयं कर्तरी तुल्यं, त्रिविधं घूतं लक्षणम् ॥१४५
 परेषां द्रोहिणो दुष्टाः, परदार रताः सदा ।
 परापवाद संमग्नाः, परद्रव्यापहारकाः ॥१४६
 ये भवन्ति रताः स्वार्थे, ते नररूप राक्षसाः ।
 खलाः सन्ति च सर्वत्र, परिवार विरोधिनः ॥१४७
 परेषाञ्च विपत्तौ हि, सुखिनः सन्ति दुर्जनाः ।
 मातृपितृ द्विजानाञ्च, गुरोः सन्ति विरोधिनः ॥१४८

कथा कदापि रामस्य, दुर्जनेभ्योन रोचते ।
 प्रायश्च दुर्जनास्तात, संभवन्ति कलौयुगे ॥१४६
 परस्वार्थसमं भ्रातः, सुधर्मो नैव विद्यते ।
 सदृशोऽन्याप कारस्य, ह्यधर्मो नैव वर्तते ॥१४७
 शुभाशुभ फलं दाता, हेभ्रातश्च भवाम्यहम् ।
 एवं विचारयन्तश्च, सन्तास्ते मां भजन्तिहि ॥१४८
 राघवस्योप देशं हि, संश्रुत्य भ्रातर स्तदा ।
 सर्वे प्रहर्षिता जाता, प्रणोमुस्ते कर द्वयम् ॥१४९
 एक दा रामचन्द्रोवै, प्रजाजनान् समाह्वयत् ।
 ददौ सदुपदेशंस्वम् सर्वेषाञ्चैव सन्निधौ ॥१५०
 शृणुध्वं नागरा यूयं, प्रियं मे चानुशासनम् ।
 शासनं येन मन्यन्ते, संकटं प्राप्नुवन्ति ते ॥१५१
 भाग्येन मानुषं देह, प्राप्नुवन्ति नराः क्वचित् ।
 तस्मात् सर्वेण भावेन, सत्यं चरत नागराः १५२
 सत्कर्मणोर्निरस्तेन, पारणामं दुख प्रदम् ।
 परिणामञ्च भुञ्जन्ति, सदाते पामरा जनाः ॥१५३
 पश्चात्ताप प्रकुर्वन्ति, शिरोनिघ्नन्ति वैशुचा ।
 दोषं ददति ते व्यर्थं, भगवत् काल कर्मणे ॥१५४
 वेद दिगूलक्ष योनौच, भ्रमन्ति कुजनाः सदा ।
 कदा चिदपि मायाया, नान्तं प्राप्स्यन्ति दुर्जना ॥१५५
 यदि मोक्षं समीच्छन्तु प्रभुं तर्हि भजन्तु भोः ।
 लोका मां भक्ति हीनास्ते, भजन्ति न कदाचन ॥१५६
 पूजयन्ति च ये विप्रान्, मन वाक् कर्म तत्पराः ।
 तेषां वै चानुकूलाश्च, मुनयः ज्ञाने वेदिनः ॥१५७
 पुण्यं तत्त्वं तथा मत्वा, ग्लानिं सं त्यज्य नागराः ।
 धर्मं कुरुत हे प्राज्ञा, हरिं भजत सर्वदा ॥१५८
 भक्तिं मुक्तिं मणिं हित्वा, योन्यां मणिं समीहते ।
 व्यक्तित्वं नाशितं तेन, तस्य जन्म निरर्थकम् ॥१५९

मंत्र मे कञ्च गुप्तं हि, शंकरं भजनं बिना ।
 सुभक्तिं माञ्च नाप्नोति, भजतेयो शिवं नहि ॥१६३
 सुधेव निसृता वाणो, रामस्य परमात्मन ॥
 तां श्रुत्वा मोदिता जाता, परं भक्ताः प्रजा जनाः ॥१६४
 सच्चिदानन्दरामंतं, दृष्ट्वा च रघुनन्दनम् ।
 परमानन्द संयुक्ता जग्मुस्ते शरणागतम् ॥१६५
 अयोध्या वासिनः सर्वे, कृत कृत्यं च मेनिरे ।
 एकदा तु वशिष्ठो वै, दर्शनाय समाययौ ॥१६६
 गुरुं समागतं दृष्ट्वा, रामोराजीव लोचनः ।
 पादौ प्रक्षाल्य तन्मूर्ध्नि, दधार चरणोदकम् ॥१६७
 गुरु श्रेष्ठ नमस्तुभ्यं, दर्शनात् सफलोस्मिन्ने
 रामस्य वचनं श्रुत्वा, गुरूर्हर्षं मुपागमत् १६८
 भवतः कृत कृत्योस्मि, ह्याचार्य त्वाच्च हे प्रभो ।
 तस्य सर्वज्ञ विज्ञानी, सपण्डितो ऽस्ति चैव हि ॥१६९
 यस्तु ते पाद पद्मं च, संध्यायाति दिनं दिनम् ।
 वरं देहि वरं देहि, हे नाथ करुणा निधे ॥१७०
 प्रति जन्मनि मे नाथ, श्री पादयोः रतिः सदा ।
 प्रत्यहं भजने कृत्वा, प्राप्नुवाम सुमोचनम् ॥१७१
 गुरोर्वैर्वचश्च संश्रुत्य, श्रीरामो राघवोत्तमः ।
 गुरोर्भावसमा दृश्य प्रभुर्हर्षं मुपागतः ॥१७२
 तदा सुनारदो योगी, दर्शनाय समागतः ।
 दर्शनं स्तवनं कृत्वा, नारदः प्रत्यगान्मुदा ॥१७३
 रामो दृष्ट्वा हनूमन्तं, प्रत्युवाच मुदान्वितः ।
 हनुमनं कृत कार्थोसि, धन्योसि वानरोत्तम ॥१७४
 उल्लंघ्य सागरं भीमं, लंकां प्रमथ्य दुर्गमाम् ।
 सीता शोकञ्च संदह्य, लंकां दिव्यां भयंकराम् ॥१७५
 पर्वतञ्च समुत्पाटय, नीत्वा संजीवनीं वटीम् ।
 लक्ष्मणस्य विपन्नस्य, जीव रक्षा कृता त्वया १७६

दासानामग्रगण्योसि, मेऽनन्य परमः सखा ।
 कदापि वीर है भक्त, नानृण्यञ्च भवान्यहम् ॥१७७
 यावत् सुरसरौ धारा, विद्यते पृथ्वी तले ।
 यावन्मे नाम माहात्म्यं सुपूजा ते भविष्यति ॥१७८
 श्रीरामस्य मुखाच्छ्रुत्वा, स्तुतिं हनुमस्तदा ।
 सर्वे प्रहर्षिता जाताः, परं भक्तञ्च मेनिरे ॥१७९
 इति च परमं पुण्यं, चरित्रं कल्मषापहम् ।
 परं मोक्षं प्रदातारं, ज्ञान भक्ति प्रवर्धनम् ॥ १८०
 पूर्वोक्तं राम चारित्र्यं, शिवां प्रति शिवः प्रभुः ।
 वाक्य मानन्द कन्दवै, प्राहेदञ्च जगद् गुरु ॥ १८१
 श्री शिवस्य मुखाच्छ्रुत्वा, श्री रामचरितं महत् ।
 पार्वती हर्ष संभग्ना परां शान्ति मुपागमत् ॥ १८२
 हर्षैर्गैव निमग्ना सा, निजैर्गार्द पतिं प्रति ।
 हे प्रभो करुणा सिन्धो, श्रुत्वा राम कथानकम् ॥ १८३
 त्वन्तः सदुपदेशं मे, निन्द्याशंका विनिर्गता ।
 परां वृत्तिं समायाता, कृतार्था वै भवान्य हम् ॥१८४
 नररूपं परं ब्रह्म, रामं मन्ये निरन्तरम् ।
 प्रभो तद् ब्र हि ये चान्ये, के के यान्ति परां गतिम् ॥ १८५

अष्टाविंशो विरामः

गिरजे शृणु मद्वार्त्तां, यथा ज्ञानं कथानकम्,
 पुरासीर्दत्त पुत्रीत्वं, पत्नी मम यशस्विनी ॥ १८६
 पितुर्यज्ञञ्च संस्मृत्य, गतायज्ञ महोत्सवे ।
 दत्तयज्ञाय मानाञ्च, संददाह वपुः सती ॥ १८७
 अनादराच्च हे देवि, तत्याज स्व वपुस्तदा ।
 सतीशोकाभि भूतोहं, दृष्ट्वा तामी दृशीं दशाम् ॥१८८

सर्वाननु चरान् शीघ्रं, यज्ञविध्वंस नाय हि ।
 आह्लाञ्च दत्तवान् तीक्ष्णां, परं क्रोध समाकुलः ॥ १८६
 तदामेऽनुचराः सर्वे, दत्त यज्ञं व्यनाशयन् ।
 सतीशरीर नाशात्तु, महाशोका कुलोऽभवम् ॥ १८७
 तदाहं विमनो भूत्वा, सुमेरु पर्वतं गतः ।
 दृष्ट्वा स्थलं परं रम्यं, सुन्दरञ्च शुभा श्रमम् ॥ १८८
 भक्तं काग भुशुण्डिं वै, संददर्श महामतिम् ।
 वट वृक्षे स्थितः श्रेष्ठो, भक्तान् आवयत्कथाम् ॥ १८९
 स्वगवृन्दैश्च संभूय, श्रुतं राम कथानकम् ।
 धृत्वा मयूर वेशं हि, किञ्चित् कालं श्रुतं मया ॥ १९०
 एकदा शुभगे साध्वि, गरुडो मोहमाप्नुतः ।
 मेघनादेन युद्धे वै, वन्धितौ राम लक्ष्मणौ ॥ १९१
 ब्रह्मपाशेन सं बद्धौ, दृष्ट्वा च नारदो मुनिः ।
 प्रेषितवाञ्च सर्पारिं, बन्धनं कर्त्तुं नाय हि ॥ १९२
 गरुडो बन्धनं हित्वा, तदा च मोह माप्नुवान् ।
 यदि रामः परं ब्रह्म, तर्हि वै बन्धनं कुतः ॥ १९३
 यो रामः सृष्टि संहर्ता, प्रजा पालन तत्परः ।
 यस्तु साक्षात् परं ब्रह्म, कथं बन्धन माप्नुवान् ॥ १९४
 इति मोहेन चाकृष्टो, नारदं समुपा गमत् ।
 प्रेषितो नारदे नैव, ब्रह्माणं शरणं गतः ॥ १९५
 ब्रह्मणा प्रेषितं क्षिप्रं, समीपं मे समागतः ।
 गरुडस्य वचः श्रुत्वा, प्रत्युवाच त्व हं मुदा । ॥ १९६
 शीघ्रं गच्छ हि सर्पारि, भुशुण्डेश्च शुभाश्रमम् ।
 राम वार्ताञ्च संश्रुत्य, मोह नाशं भविष्यात् ॥ २००
 सद्यो जगाम सः शीघ्रं, नील पर्वत मध्यगम् ।
 शैलं सुशोभनं दृष्ट्वा गरुडो मुदमाप्नुवान् ॥ २०१
 भुशुण्डिं गरुडं दृष्ट्वा, दत्तवान् शुभमासनम् ।
 वन्दनं विहगः कृत्वा, शुभासन मुपा विशत् ॥ २०२

भवतः स्तवनं देव, शंकरेण कृतं मुदा ।
 राघवस्य शुभां, वार्तां, ब्रूहि त्वं हे तपोधन ॥ २०३
 गरुडस्य वचः श्रुत्वा, भुशुण्डिः प्रत्युवाच तम् ।
 श्रीरामस्य कथा पुण्या, सासदा सुख दायिनी ॥ २०४
 मोहं पापं भ्रम हन्त्री, तांशृणुष्व खगोत्तम ।
 कोशलेशः सुतेच्छुश्च, यज्ञमीजे चतुर्विधम् ॥ २०५
 हव्य वाट् सुप्रसन्नः सन्, ददौ हव्यं परं मुदा ।
 तस्मात् राज्ञश्चतुः पुत्रा, अजायन् परमाद्भुताः ॥ २०६
 राम लक्ष्मण शत्रुघ्नो, भरतश्च सुतोत्तमाः ।
 विश्वामित्राय राज्ञावै, प्रदत्तौ राम लक्ष्मणौ ॥ २०७
 मख संरक्षणार्थाय, पुत्राणां मुददाय च ।
 जघान सानुजो राम, स्ताटकादि निशाचरान् ॥ २०८
 गौतमस्य सुपत्न्यास्तु, चाहिल्याया विशेषतः ।
 कृतवान् वै समुद्धारं, रामो राजीव लोचनः ॥ २०९
 यज्ञस्य रक्षणं कृत्वा, मिथिलां समुपाययौ ।
 धनुषः खण्डनं कृत्वा, सः सीतामविवाहयत् ॥ २१०
 खिन्नं परशुरामञ्च, संतोष्य स्व पुरीं गतः ।
 सीतां नीत्वा तदा रामः, स्वपुरीं प्राविशन्मुदा ॥ २११
 ततो दशरथो राजा, यौवराज्यं समादिशत् ।
 योग्याय रामचन्द्राय, सर्वेषां जन संसदि ॥ २१२
 तदा सा कैकयी राज्ञी वरदान मयाचत ।
 रामाय वन वासञ्च, सुराज्यं भारताय वै ॥ २१३
 जानकी सहितो रामो, लक्ष्मणश्च समन्वितः ।
 वनं जगाम रामोवै, मिलनं भरतस्य च ॥ २१४
 ददौ रामः पर प्रेम्णा, भरताय च पादुकाम् ।
 भरतो मातृभिः सार्धं, साकेतञ्च न्यवर्तत ॥ २१५
 भरद्वाज सुतीक्ष्णा दीन्, सर्वान् मुनीन् दर्शयत् ।
 मुनीनामा श्रमं गत्वा, परं ज्ञानं समादिशत् ॥ २१६

पञ्चवट्यां तदा रामो, जघान खरदूषणान् ।

नासाकर्णौ हि चिच्छेद, भगिन्या रावणस्य च ॥ २१७

काञ्चनं सुमृगं दृष्ट्वा, मारीचं सं जघान सः ।

सीताया हरणं दृष्ट्वा, परं शोक मुपागमत् ॥ २१८

शव्यै दर्शनं दत्वा, पम्पासरे न्युवास हिं ।

जटायु गृद्ध राजाय, सद्गतिञ्चैव दत्तवान् ॥ २१९

अकरोच्च तदा मैत्रीं, सुग्रीवै वानरैः सह ।

कीश श्रेष्ठं हनूमन्तं, लंकां वै प्राहिणोत्तदा ॥ २२०

समुद्रं लंघयित्वा सौ, हनूमान् वानरोत्तमः ।

जघान चान्नयं वीरं, लंकां संदह्य मारुतिः ॥ २२१

रावणाय भयं दत्वा, जगाम राम सन्निधौ ।

वारीश बन्धनं कृत्वा, राघवः पुरुषोत्तमः ॥ २२२

वानरी सेनया सार्धं, लंका पारं ततो गतः ।

रावणेन प्रिय भ्राता, निरादृतो विभीषणः ॥ २२३

प्रभोः समीप मागत्य, राम मैत्रीं तदा करोत् ।

अंगदः प्रेषितः प्रेम्णा, श्री रामेण महात्मना ॥ २२४

सन्धि वार्तां प्रबोधाय, रावणस्य च सन्निधौ ।

रावणस्य च दुर्वत्तं, श्रुत्वा रामस्तु वानरात् ॥ २२५

लक्ष्मणः प्रेषितस्तेन, मेघनादस्य चाहवे ।

सदैत्यो लक्ष्मणं युद्धे, जघान शक्ति घातिनीम् ॥ २२६

लक्ष्मणं पतितं दृष्ट्वा, परं शोकमुपा गमत् ।

औषध्या जीवनं प्राप्तं, विक्रमेण हनूमतः ॥ २२७

कुम्भकर्णं महाघोरं, मेघनाद मकंपनम् ।

जघान दारुणान् राम,स्तान् रावणादि राक्षसान् ॥ २२८

विभीषणाय संम्राजे, राज्यं रामो ददौ पुनः ।

अग्नेश्च साक्षिणं कृत्वा, सीतां नीत्वा, खगोत्तम ॥ २२९

पुष्पकेण विमानेन, नगरीं प्रस्थितः प्रभुः ।

मुनिनं माश्रमं श्रेष्ठं, गंगादेवीं फल प्रदाम् ॥ २३०

रामो देशञ्च पश्यन् सन्, साकेतं प्राविशत्तदा ।
 भरतञ्च वशिष्ठञ्च, मातुः परिजनान्तथा ॥ २३१
 मिलित्वा योग्य धर्मिष्ठान्, रामो मोद मुपागमत् ।
 गुरोरनुम ते नैव, राज्ये रामः प्रतिष्ठितः ॥ २३२
 रामेराज्ये समासने, स्वयं फलवती हि भूः ।
 सूर्य समुद्राश्च, सर्वे ऽ मन्यन्त शासनम् ॥ २३३
 दैविका भौतिकास्ताम, दैहिकाश्च खगोत्तम ।
 उत्पाताश्च महामारी, नाभूवञ्च कदाचन ॥ २३४
 पुण्य धर्म रताः सर्वे, सत्यव्रत परायणः ।
 सदा सुकर्म संलग्ना, राम राज्ये सुखीजनाः ॥ २३५
 गरुडं तु समासीनं भुशुण्डि निर्जगाद वै ।
 ईश्वरस्य महामाया, सर्वेषाञ्च विमोहिनी ॥ २३६
 नारदादि महामाया, ब्रह्मा च सनकायदयः ।
 सदसत् ज्ञानिनः सर्वे, ते मायायां विमोहिताः ॥ २३७
 नकञ्च बाधते वृष्णा, क्रोधः कं न दहत्यपि ।
 तपस्वी ज्ञानिनः सर्वान्, माया कं न विमुह्यति ॥ २३८
 मदेन ये न वक्राः स्युः, प्रभुत्वेन मोहिताः ।
 वामायास्तु कटाक्षेण, न विमुह्यन्ति ये जनाः ॥ २३९
 नरोत्तमास्तु ते प्राज्ञ, दुर्लभा जगती तले ।
 कलकं कस्य नैवोस्ति, कस्मै शोकं न मुह्यति ॥ २४०
 चिन्तया नैव दग्धोऽस्ति, कंमाया न विमुह्यति ।
 सुतेर्बाधन रोषाये, व्रन्ति कस्यधियं नहि ॥ २४१
 पूर्वं त्कानि कुटुम्बानि, मायाया गदितानि मोः ।
 शिव ब्रह्मादि देवतास्ते, पारं न प्राप्नुवन्ति नु ॥ २४२
 अन्ये जीवास्तु मायाः, कथं पारं प्रायान्ति वै ।
 अयोव्यां हि समागत्य, बाल लीलां खगोत्तम ॥ २४३
 अपश्यञ्च परं प्रेम्णा, परां मुक्तिं मुपागतः ।
 किञ्चित् कालं व्यतीयाय, निजाश्रमं समाययौ ॥ २४४

भक्तिं प्राप्य च रामस्य, शान्तं चित्तं भवाम्यहम् ।
 परं स्नेहेन रामेण, वशित्वं च कृतं यदा ॥ २४५
 तदारभ्य सखे पद्मिन्, माञ्च माया न बाधते ।
 प्रभोः सत्तां न जानाति, श्री रामस्य कृपां विना ॥ २४६
 जानते सति विश्वासं, तस्मात् प्रीतिं विवर्धते ।
 भक्तिः प्रजायते प्रीत्या, मुक्तिश्च लभ्यते ॥ २४७
 सन्तोषेन विना सौम्य, न सुखं लभते क्वचित् ।
 रामस्य भजने नैव, जनः शान्तिं मवाप्नुवान् ॥ २४८
 विज्ञानेन विना पद्मिन्, शमत्वं नैवलभ्यते ।
 श्रद्धां विना न धर्मोस्ति, यथा बीजं धरां विना ॥ २४९
 भाव वश्यः सदा स्याद्वि, सुखा लयो रघूत्तमः ।
 ममताञ्च मदं त्यक्त्वा, रामं भज खगोत्तम ॥ २५०
 भुशुण्डेस्तु वचः श्रुत्वा, हर्षितश्च खगोत्तमः ।
 भक्तिं रामस्य संप्राप्य, भुशुण्डिं प्रत्युवाचहि २५१
 भ्रमसर्पं हि मे नाथ त्वया ज्ञानेन नाशितम् ।
 भुशुण्डे शृणु मे हृद्यं, सिद्धान्तं च सुखावहम् ॥ २५२
 गुरुं विना तितीर्षन्ति, ये भव सागरं जनाः ।
 विना नावं यथा मूर्खाः, तितीर्षन्ति, जलार्णवम् ॥ २५३
 तस्मात् गुरुञ्च सवेत, परंभक्त्या खगोत्तम ।
 तद्भक्तिं पोत रूपेण, तितीर्षति भवार्णवम् ॥ २५४
 निन्द्यं काग शरीरं वै, त्वं विभर्षि कथं प्रिय ।
 इत्थं मनसि मे शङ्का, तन्निवारय सुव्रत ॥ २५५
 परं ज्ञानञ्च मे देहि, यत्तुलोक हितावहम् ।
 लोकं शान्तिं प्रदं ज्ञानं, ब्रूहि त्वञ्ज तपोधन ॥ २५६
 पूर्वोक्तं वचनं श्रुत्वा, भुशुण्डिः प्रत्युवाचतम् ।
 अने नैव शरीरेण, राम भक्तिं लभामहे ॥ २५७
 तस्माच्च काग रूपं मे, महत् प्रिय तमः सदा ।
 रामाद्वि विमुखो यस्तु, तथा भक्तिं विनिन्दकः ॥ २५८

ब्राह्मणो यदि देहोस्ति, तज्ज निन्दन्ति कोविदाः ।

राम भक्ति प्रभावेण, नाना जन्म स्मृतिश्च माम् ॥२५६॥

जन्मनः प्रथमं वृत्तं, कथयामि खगोत्तम ।

जन्मनि प्रथमे तात, कोशलस्य पुरेऽभवम् ॥२६०॥

गृहे शूद्रस्य जातोहं, चाभिमानी विनिन्दः ।

मद मत्तो हि वाचालो, हठी पाप परायणः ॥२६१॥

अन्य जन्मनि गत्वा च, रामभक्ति समाचरम् ।

प्रभो भक्ति प्रभावेण, पूर्णं ज्ञानमवाप्तवान् ॥२६२॥

श्री रामस्य प्रभावं वै, सर्वं जानामि चाद्य तु ।

कलिकालस्य वृत्तान्तं, खगेश त्वां ब्रवीमिभोः ॥२६३॥

पाखण्ड निरता लोकाः, सदा पाप परायणः ।

सद् ग्रन्थास्तु च सद्धर्मा, लुप्ताः सन्ति कलौ युगे ॥२६४॥

शिष्टाचारं सदाचारं, मर्यादायाश्च पालनम् ।

श्रुतिधर्मं परिज्ञानं, ते त्यज्यन्ति कलौ जनाः ॥२६५॥

वर्णाश्चाश्रम धर्माश्च, सर्वे नश्यन्ति योगतः ।

नरा नार्यश्च सर्पा रे, श्रुत्यां विद्वेष कारकाः ॥२६६॥

वर्णाः सर्वे न मन्यन्ते, वेदानामनुशासनम् ।

मन सेषित मार्गं वै, संगृह्णन्ति प्रजा जनाः ॥२६७॥

वचाटाश्च धनाढ्या ये, पंडिताः स्युः कलौ युगे ।

पर स्त्री धन हर्तव्य, श्लाघनीयः सुखी जनः ॥२६८॥

मिथ्यावादी दुराचारी, चाट्टहास प्रियो जनः ।

स एव कुशलः श्रेष्ठः, स्व कीर्तिं लभते कलौ ॥२६९॥

जटिलश्च नखी मुण्डी, दंभ वेशे विभूषितः ।

अभक्ष्य भोज्य संमग्नः, सः तपस्वी गुणाग्रणीः ॥२७०॥

शूद्रा यज्ञोपवीतञ्च, धारयित्वा कलौ युगे ।

दानं गृह्णन्ति सर्वेषां, मुपदेशं दिशान्ति ते ॥२७१॥

वरासने समासीनाः, पुराणं कथयन्ति वै ।

शूद्रवच्चप्रजा सर्वाः, श्रुतौ धर्मे विनिन्दकाः ॥२७२॥

नारि वश्या जनाः सर्वे, नृत्यन्ति मर्कटा यथा ।
 गुणाढ्यं स्व पतिं नारी, त्यक्त्वान्यं भजते पतिम् ॥२७३
 पतिं पुत्रवती नारी, खिद्यते भूषणं विना ।
 वैधव्यं सहिता नारी, भूषणैस्तु सुसज्जिता ॥२७४
 सन्यासं परिगृह्णन्ति, वर्णाधमाश्च ये कलौ ।
 स्व पादं पूजनञ्चापि, विप्रेश्च कारयन्ति ते ॥२७५
 तपस्विनो धनाढ्याःस्युः, दर्शिता गृहिणाः कलौ ।
 त्यजन्तिहि सतीं नारीं, जना गृह्णन्ति दुर्भगाम् ॥२७६
 पुत्राः पत्नीं मुखं दृष्ट्वा, मातरं पितरं तथा ।
 मान्यवर्गाश्च पूज्यान्वै, तिरस्कुर्वन्ति बान्धवान् ॥२७७
 कन्या विक्रयिणो लोकाः, परं स्वार्थे बहिर्मुखाः ।
 वराटिकां प्रलोभेन, परित्यजन्ति सौहृदम् ॥२७८
 जनानां सर्वं पापैश्च, बीजमस्ति कलौधरा ।
 नैव मेघाश्च वर्षन्ति, यथा काले कदाचन ॥२७९
 विना चान्तेन नागारे, त्यज्यन्ति जीवितं नराः ।
 धर्मं नैव च मन्यन्ते, कामासक्तास्तु शासकाः ॥२८०
 कुलीना निष्कुलीना नां, सेवां कुर्वन्ति सर्वदा ।
 आप्तोक्तं विहितं मार्गं, भिन्दन्त्येव कलौ जनाः ॥२८१
 जनाः स्व संस्कृतिं हित्वा, बाञ्छन्ति परं संस्कृतिम् ।
 स्वभाषा निन्दकाः सति, परभाषा प्रशंसकाः ॥२८२
 धृत्वा मनसि तं रामं, केवलं राघवं भज ।
 दयालुस्तव रामोसौ, सात्रोत्येव मनोरथम् ॥२८३

नवविंशो विरामः

ध्यानं विष्णोः कृते कृत्वा, प्रयान्ति सुगतिं जनाः ।
 त्रेतायां यजनं कृत्वा, लभन्ते मुक्तिं मुत्तमाम् ॥२८४

द्वापरे परिचर्यायां, संलभन्ते परं पदम् ।
 कलेस्तुल्यं युगो नास्ति, साधनं नैव दुस्करम् ॥२८५
 विष्णोः सुकीर्तनादेव, मुक्तिमाप्नोति सज्जनः ।
 तस्माच्च कीर्तनं श्रेष्ठं, कलौ चास्ति खगोत्तम ॥२८६
 कलौ तु मनसः पापं, नैव संलभते फलम् ।
 अतः सर्वं परित्यज्य, भज रामं दयानिधिम् ॥२८७
 ऐश्वर्यं संभवं ज्ञानं, विज्ञानं मणिमादयः ।
 ईश्वरे निहताः सर्वा, विश्वस्य सकलाः कलाः ॥२८८
 प्रभौ विश्वेश्वरेऽनन्ते, विराजि पुरुषोत्तमे ।
 अनन्ता प्रकृतिः सर्वा, विद्यते हि निरन्तरम् ॥२८९
 यं ब्रह्मा वरुणेन्द्राश्च, मरीचि शिव नारदाः ।
 संस्तुवन्ति शुभैः स्तोत्रैः, गायन्ति वेद पारगाः ॥२९०
 आदिमध्यावसानेषु, यस्तिष्ठति स्वयं प्रभुः ।
 ब्रह्म रूपं हि यं रामं, ध्यायन्ति परमर्षयः ॥२९१
 तमेव निर्गुणं ब्रह्म, सगुणं द्वैर्धं मन्वयम् ।
 सदानन्दं चिदानन्दं, त्वं भजस्व खगोत्तम ॥२९२
 खगेशस्तु परं प्रेम्णा, भुशुण्डि प्रत्युवाच वै ।
 दासोऽयं मातमां मत्वा, सप्त प्रश्नान् वदस्व भौः ॥ २९३
 शरीरेषु च सर्वेषु, किं शरीरं प्रशस्यते ।
 किम्वा महा सुखं कष्टं, संक्षेपेण प्रशंस माम् ॥ २९४
 महा पुण्यं महा पापं, रोगं किं मानसं वद ।
 शृणुष्व त्वं परं प्रीत्या, संक्षेपेण वदामि तान् ॥ २९५
 लोके सर्वेषु जीवेषु, नरः श्रेष्ठ तमोमतः ।
 नृवपु नरकं स्वर्गं, मोक्षञ्च प्रददाति नः ॥ २९६
 शरीरं मातुषं प्राप्य, व्यर्थं कुर्यात् कदापि न ।
 श्री रामञ्च भजेद्भक्त्या, मा कुर्यात् विषये रतम् ॥ २९७
 वेददिग् लक्ष्मणोऽहो, कष्टात् प्राप्नोति तद् वपुः ।
 तस्मात् सर्वं प्रयत्नेन, निद्यं कुर्यान्न तद् वपुः ॥ २९८

दरिद्रेण समं कष्टं, न विद्यते कदाचन ।
 सत्संगत्याः समं तात, सुखं नास्ति हि भूतले ॥ २९६
 सदाचारे परस्वार्थे, कार्यं कुर्वन्ति सज्जनाः ।
 परार्थेषु, च कष्टं ते, सहन्ते वै त्वहर्गिराम् ॥ ३००
 जनेभ्यः सर्वं कार्येभ्यः कष्टं ददति दुर्जनाः ।
 परेषामपि कारेषु, सदा संलग्नदुर्जनाः ॥ ३०१
 ते नाशयन्ति कार्याणि, सस्येषु चोपलं यथा ।
 दुर्जनाः सव कालेषु, सत्कार्याणं च घातकाः ॥ ३०२
 दुष्टानां मुदयो मित्र, विश्वनाशं दुःखप्रदः ।
 सन्तानां मुदयो मित्र, विश्वशान्तिमुखप्रदः ॥ ३०३
 अहिंसया समं पुण्यं, पापं न निन्दया समम् ।
 अहिंसाशान्तिदात्री च, निन्दा च कार्यघातिनी ॥ ३०४
 तस्मान्निदां न कुर्वीत, त्वहिंसाव्रतमाचरेत् ।
 सत्यत्वेन समं पुण्यं, पापं नैवा मृषा समम् ॥ ३०५
 यः सत्यमाचरेन्नित्यं, भक्तिमुक्तिः करे स्थिता ।
 भक्तिमुक्तिमनस्कानां, हृदितुष्टिः सुशोभते ॥ ३०६
 रामभक्तौ रता ये तु, गुणज्ञः परिडिताश्च ते ।
 ते वै धर्मानु रत्काःस्थुः, नीतिनैवपुण्यसाधकः ॥ ३०७
 त एव कुशला वृद्धाः, श्रुति सिद्धान्तकोविदाः ।
 ये तु चानन्यभावेन, संभजन्ति परं प्रभुम् ॥ ३०८
 धन्यो देशस्तु विश्वेऽस्मिन्, यत्र गंगा विराजते ।
 प्रशस्या चैव सा नारी, पाति वृत्त्यं हि धार्यते ॥ ३०९
 धन्यो नृपस्तु लोके ऽस्मिन् योनीतौ वै प्रतिष्ठते ।
 धन्यो विप्रस्तु संसारे, धर्मान्न विरतो यदि ॥ ३१०
 धन्यं धनं सुयोग्यं वै, यत्सुकार्ये समर्पितम् ।
 लोकानां तत्क्षणो धन्यः, सत्संगो येन लभ्यते ॥ ३११
 राघवं प्रति मे भक्तिः, शृणुस्व त्वं खगोत्तम ।
 श्रीसीतारामयोः पादौ, सदा काञ्चे प्रतिक्षणम् ॥ ३१२

दीनश्च मत्समो नास्ति, त्वत्समो नास्ति रक्षकः ।
 एवं विचार्य हे राम, हरस्व भव वेद नाम् ॥ ३१३
 अर्थं धर्मं न काहेहं, कामं मोक्षञ्च नैव हि ।
 प्रतिक्षणं हि वीच्छामि, रामस्य पादयोः रतिम् ॥ ३१४
 पश्यन्ति कामिनो नारीं, लोभिनञ्च धनं यथा ।
 तथैव मे प्रभो राम, सुरो चसे त्वहर्निशम् ॥ ३१५
 इति भावमतः सौम्य, सदा चिन्त्यो नरोत्तमः ।
 ध्यायामि सततं रामं राववेशं खगोत्तम ॥ ३१६
 प्रसंगा न्चैव हे तात् बोध नाय खगोत्तम ।
 एकं कथानकं रम्यं, वक्ष्ये लोकं हितावहम् ॥ ३१७
 महा रक्षा शनेः ख्याता, सागच्छति नरं यदा ।
 न ध्यायति जनो नित्यं, मनिष्ट फलं दायिनी ॥ ३१८
 तस्माद् ध्यानं प्रकर्तव्यं, प्रातः सायं खेः सुतम् ।
 शनेर्दशा प्रमाणं हि, राम रावण योः कथा ॥ ३१९
 कष्टं संप्राप्य रामो वै, कीर्तिं लेभे जय श्रियम् ।
 सः सम्राट् रावणो मृत्युं, चापकीर्तिं मवाप्नुवान् ॥ ३२०
 रामः सात्विक भावाच्च, प्राप्नुवान् विजय श्रियम् ।
 राक्षसस्ताम सत्वाच्च, नाशं प्रायाद्वि रावणः ॥ ३२१
 कौणस्थः पिंगलो वभ्रुः, कृष्णो रौद्रोऽन्त कोयमः ।
 सौरिः शनैश्चरो मंदः, पिप्पलादेन संस्तुतः ॥ ३२२
 नमोस्तु विस्फूर्जित मानसाय ।
 नमोस्तु दारिद्र्य विनाश काय ॥
 नमोस्तु सौभाग्य सुदायकाय ।
 तस्मै नमः श्री रवि नन्दनाय ॥ ३२३
 नमोस्तु तुच्छीकृत विप्रहाय ।
 नमोस्तु मालिन्य विलोपकाय ॥
 नमोस्तु वै विप्लव नाश काय ।
 तस्मै नमः श्री रवि नन्द नाय ॥ ३२४

नमोस्तु कल्याण विवर्धकाय ।

नमोस्तु विज्ञान सुदीप काय ॥

नमोस्तु संकलन विकाश काय ।

तस्मै नमः श्री रवि नन्द नाय ॥३२५॥

नमोस्तु पैशाच विमर्द काय ।

नमोस्तु वै रोग विनाश काय ॥

नमोस्तु वै संकट मोचकाय ।

तस्मै नमः श्री रवि नन्द नाय ॥३२६॥

तस्मै नमो देव शनि ग्रहाय ।

तस्मै नमो देव सुशिक्षकाय ॥

तस्मै नमो देव विवेचकाय ।

तस्मै नमो देव शनैश्चराय ॥३२७॥

तस्मै नमः कोण पराक्रमाय ।

तस्मै नमः सौरि सुविक्रमाय ॥

तस्मै नमो मन्द मदक्रमाय ।

तस्मै नमो देव शनैश्चराय ॥३२८॥

तस्मै नमः पिंगल बुद्धिदाय ।

तस्मै नमः रौद्र शनैश्चराय ॥

तस्मै नमः कृष्ण यमाय धात्रे ।

तस्मै नमः श्री रविनन्द नाय ॥३२९॥

तुभ्यं हि वध्नो नमरन्त काय ।

तुभ्यं नमः ज्ञान विकाश काय ॥

तुभ्यं नमः कल्मष नाशकाय ।

तुभ्यं नमः श्री रविनन्दनाय । ३३०

शन्यष्टकं ये प्रयतः पठन्ति ।

सदा प्रभाते मनुजाः समुत्सुकाः ॥

न दोष लेशः स्पृशतीति कोपितान् ।

नराः सुशीलाः सुखिनो भवन्ति ॥३३१॥

शन्यष्टकं मिदं पुण्यं, प्रात रुत्थाय यः पठेत् ।
 शनैश्चर कृता पीढा, न कदाचिद्भुविष्यति ॥३३२
 कथानकं महापुण्यं, श्री रामस्य महात्मनः ।
 शृण्वन्ति ये सदा भक्त्या, कैवल्य माप्नुवन्ति ते ॥३३३
 अघौघ नाशकं दिव्यं, परमानन्द दायकम् ।
 सदा तोष करं मान्यं, मुदा ग्राह्यं खगोत्तम ॥३३४
 उपदेशं भुशुण्डेश्च, श्रुत्वाहि गरुड स्तथा ।
 कृत कृत्यं हि मेने स्वं, प्रत्युवाच खगोत्तमः ॥३३५
 मम नाथ दया सिन्धो, भवत स्तूप देशतः ।
 माया मोह निराशाश्च, सपद्येवहि निर्गतः ॥३३६
 इत्येवं कथयित्वा च, प्रणम्य च पुनः पुनः ।
 रामे भक्तिं च संप्राप्य, गरुडो भवनं गतः ॥३३७
 इति शंभोर्वचः श्रुत्वा, पुण्य पाप हरं सदा ।
 उवाच पार्वती नम्रा, पतिं वै शंकरं शिवम् ॥३३८
 हे प्रभो जगदाधार, भक्तिं पुष्टं सुषावनम् ।
 श्रुतं मुखात् ते ज्ञानं, श्री रामस्य कथानकम् ॥३३९
 अमोमे निर्गतो नाथ, जाने हं पुरुषोत्तमम् ।
 परं ब्रह्म विभु रामं, निर्गुणं निर्विकारकम् ॥ ३४०
 श्रीरामस्य कथा पुण्या, सर्वेषां भक्ति दायिनी ।
 तद् विषयक संदेहात्, मुत्कास्मि तव बोधनात् ॥ ३४१
 गरुडस्य भुशुण्डेश्च, संवादं खलु पावनम् ।
 श्रावितं च मया शिष्य, श्रीरामस्य कथामृतम् ॥ ३४२
 दत्तं शिवेना पार्वत्यै, परं ज्ञानं महत्तमम् ।
 रामस्य चरितं शिष्यां, श्रुत्वा तुष्टापि पार्वती ॥ ३४३
 चरितं रघुनाथस्य, पावनं मोक्ष साधकम् ।
 सर्वेषां सुख बोधाय, सुरम्यं प्रकटी कृतम् ॥ ३४४
 ध्येयं गेयं सदा ग्राह्यं, स्मरणीय महर्निशम् ।
 सर्वेषां सुख पाठाय, यन्मया तु विवेचितम् ॥ ३४५

रामस्य चरितं प्रोक्त, मादर्शं जगती तले ।

भक्तानां सुख दानाय, सुरम्य सुर भाषया ॥ ३४६

पुण्यं यशस्य मायुष्यं, धन्यं मान्यं गुणाकरम् ।

सौख्यदं हि सदा ग्राह्यं, लिखितं चरितं मुदा ॥ ३४७

भक्ता महानुभावा ये, दोषं ददति नैव ते ।

स्वान्तः सुखाय पाठाय, संचिप्तं कथितं मया ॥ ३४८

वाल्मीकिना महा काव्यं, गम्भीरं गहनं कृतम् ।

स्वल्प ज्ञाय तु दुर्धर्षं पूर्णज्ञान समन्वितम् ॥ ३४९

गोस्वामिना कृतं काव्यं, सुहिन्दी नागरी युतम् ।

पूर्ण ज्ञान समाविष्टं, विस्तृतं च प्रकाशितम् ॥ ३५०

उभयोः स्वामिनोः काव्यात्, विस्तृतं ज्ञानमाप्नुयात् ।

तस्मात् सर्व प्रयत्नेन, संचिप्तेन मया कृतम् ॥ ३५१

स्वतन्त्रे भारते वर्षे, जन तन्त्रे समान्विते ।

कांग्रेसे शासिते राष्ट्रे, इन्दिरा मन्त्रि मण्डले ॥ ३५२

चतुर्थे चयनाव्देच, कांग्रेसे विजये सति ।

निर्मितेयं कथा रम्या, राम विशाल शास्त्रिणा ॥ ३५३

शताब्दौ चैक विंशत्यां, चतुर्विंशति विक्रमे ।

जन्मोत्सवे शुभे काले, श्री राम नवमी दिने ॥

चरितं रघुनाथस्य, कैवल्यञ्च सुख प्रदम् ।

समर्पितं विनम्रेण, श्री राम पाद पद्मयोः ॥ ३५५

रामपुरस्य सांनिध्ये, शुभ्रा मौलि सरित्ते ।

रामस्य चरितं योज्यं, गैवीनाथ शुभाश्रमे ॥ ३५६

पोंडीकला शुभे ग्रामे, जावालिपुर मण्डले ।

निवसामि प्रहर्षेण, सिंहोरा ह्युप मण्डले ॥ ३५७

शिष्य स्त्वहं मधुवनस्य विशाल बुद्धेः ।

श्री गोकुलस्य विदुषस्तनयो यवीयान् ॥

श्री रामनाथ चरितस्य विवेक बुद्ध्या ।

कर्त्तास्मि नाम मम रामविशाल शर्मा ॥ ३५८

सद्बुद्धिना सद्गुरुलब्ध बुद्धिना ।

सत्कर्मणा राम विशाल शर्मणा ॥

पौडीकलां ग्राम निवासिना स्वयम् ।

सन्निर्मिता साधु सुराम सत्कथा ॥३५६

आश्रित्य सरलां भाषां, संचिप्तेन परिष्कृतम् ।

संस्कृतेन सुसंवद्धं, श्रीरामस्य कथाय कम् ॥ ३६०

रामायणं हि संचिप्तं, सत्य पीयूष मिश्रितम् ।

पठन्ति ये सदा भक्त्या, प्राप्नुवन्ति परं सुखम् ॥३६१

दशरथं वशिष्ठञ्च, सुग्रीव, मंगदं तथा ।

जाम्बवन्तं सुमन्त्रञ्च, वन्दे प्राज्ञं विभीषणम् ॥ ३६२

सीतां देवीं जगद्वन्द्यां, वन्दे च वायुनन्दनम् ।

लक्ष्मणञ्चैव शत्रुघ्नं, भरतं शुभदायकम् ॥ ३६३

वन्दे सीता पतिं रामं, विश्वेशं रघुनायकम् ।

अद्वैतं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥ ३६४

ध्येयं गेयं, सदा मान्यं, पठनीयं त्वहर्निशम् ।

रामस्य चरितं शिष्य, वन्दनीयम भीक्षुणशः ॥ ३६५

श्री राम चरितं काव्यं, सरलं सुन्दरं शिवम् ।

यः पठेदिह शं प्राप्य, मोक्षमाप्नोति सर्वदा ॥ ३६६

शुभं देशं वन्द्यं प्रगति पथगं भारत वरम् ।

सुपूज्यं सर्वेषामति शुचितमं गौरव युतम् ॥

विदेशानां मान्यं स्मृति मुनि नुतं धर्म निरतम् ।

नमामीत्यं पूज्यं सुजन सविधे संस्कृति वरम् ॥ ३६७

त्रिंशो विरामः

इति श्री पं० रामविशाल शास्त्रि विरचिते श्रीरामचरिते

उत्तरकाण्डम् समाप्तम्

॥ अथास्माकं पूर्वं जेनायोध्या प्रसादेन पौराणिकेन विरचितमिदं ॥

नर्मदाष्टकम्

नमो नर्मदायै शिवायै शुभायै ।

सदानन्द चिद्ब्रह्म पूर्णात्मिकायै ॥

गिरीश प्रियायै जगत्पावनायै ।

हिमो स्त्रो द्भोवायै मुनीन्द्रार्चितायै ॥१॥

नमस्त्याः प्रभावं विदुः केचनापि ।

विदुर्य त्रभावाद् यदं ध्यर्चनेन ॥

समालोक नात् स्नानतः स्पर्शनाच्च ।

समस्ताघ हन्त्रयै नमो द्वास्तु तस्यै ॥२॥

महांहा अपि त्वज्जल स्याभिषेकात् ।

समायान्ति नष्टा खिलांह स्त्वमाशु ॥

अतस्त्वत्क मेवाह मुत्से वितुंसं ।

प्रपन्नोस्मि ते नीर जातांघ्रि युग्मम् ॥३॥

त्वदंभः समं कं न चेहास्ति लोके ।

ऽखिलामो वहञ्चार्थि कामाभि पूरम् ॥

इति ज्ञाय याचे समस्तार्थं दायाः ।

सुसेव्यं सदा ऽऽजन्म सं स्यात्त्व दम्बु ॥४॥

कईशे त्वदम्बु प्रभावं प्रवक्तुं ।

नुतं त्रिष्णु रुद्रात्म भूमिः सुभक्तया ॥

जडास्त्वज्जले संलपुताः शंभुतां वै ।

समायान्ति किं चेतनास्त्वत्र चित्रम् ॥५॥

अविद्या दृढ ग्रन्थि सूच्छेदनाय ।

त्वमेवाल मस्यत्र नद्यो न चान्याः ॥

निजाज्ञान जध्वान्त नष्टात्म दृष्टे ।

रतोरक्ष मां त्वाम वाप्तं भवाहेः ॥६

अनर्मास्म्यहं नर्मदा त्वं यतो सि ।

प्रयच्छेह नर्माण्यतः प्रार्थये त्वाम् ॥

जलं नार्मदं सेवमान स्त्वदीयं ।

महिम्ना तवोत्कण्ठितो यत्प्रभावात् ॥७

मरुत् संयमानन्द मग्नांत रात्म ।

प्रकाश प्रणष्टाखिल्लद्वैत दृष्टिः ॥

हृदौकार वर्णान् व्यलाप्यर्द्धमात्रम् ।

तुरीयं परंधाम संचिन्तयन् स्याम ॥८

इदं नर्मदाया भुजंग प्रयात ।

मयोध्या प्रसादेन पापौघहंतृ ॥

कृतं श्रद्धयायो गृणीतेष्टकं वै ।

सभोगान बाप्येह सं शान्ति मेति ॥९

इति श्री अस्माकं पूर्वजेनायोध्या प्रसादेन

विरचितं नर्मदाष्टकं सम्पूर्णम् ।

सम्मतियाँ

श्रीमान मदनलाल चौबे प्राचार्य

शासकीय बहुचद्देशीय उच्चतर माध्यमिक शाला—वीना

प्रिय शास्त्री जी

मैंने आपकी सरल संस्कृत में लिखी रामयण देखी-पुस्तक, सरल, रोचक तथा ज्ञानवर्धक है तथा नए वालकों को संस्कृत सीखने का चाव उत्पन्न करने के लिए बहुत उपयोगी है। अच्छी हिन्दी जानने वाला इस पुस्तक को सरलता से पढ़ और समझ सकता है। ऐसी पुस्तक शालाओं में विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त बहु मूल्य सिद्ध होगी। इससे एक ओर जहाँ संस्कृत के प्रचार में सहायता मिलेगी, वहीं वालकों तथा नवयुकों का ज्ञान वर्धन भी हो सकेगा। मैं आपके प्रयास की प्रशंसा करता हूँ तथा इस पुस्तक के मंगल भविष्य की कामना करता हूँ।

२४।११।६७

दिनांक

भवदीय

मदनलाल चौबे

—१०१—

डा० राजबली पारडेय, एम ए० डी० लिट् कुलपति, जवलपुर विश्व विद्यालय

श्री पं० रामविशाल त्रिपाठी शास्त्री द्वारा विरचित “श्रीरामचरितम्” काव्य को देखकर प्रसन्नता हुई। श्रीराम कथा को पंडित जी ने अत्यंत सरल और सुवोध संस्कृत में वालकों तथा सामान्य जनता के कृतार्थ बड़े परिश्रम और भक्ति भाव से लिखा है। राम कथा युग-युग से गंगा के समान प्रवाहित होती रही है। सुधी जनों ने इसे लोक हिताय बारम्बार कहा है। यह अमर परम्परा बन गयी है! आज से कई शताब्दियों पूर्व राजशेखर ने ‘बाल रामायण’ की रचना की थी। प्रस्तुत काव्य इसी शृंखला की एक कड़ी है। इसके प्रकाशन से संस्कृत काव्य की परम्परा जारी रहेगी और जनता का निश्चित लाभ होगा।

मैं बड़ी प्रसन्नता से इसका अभिनन्दन करता हूँ। आशा करता हूँ कि लोक में इसका समुचित आदर होगा।

१२-१२-६८

राजबली पारडेय

कुलपति-जवलपुर विश्वविद्यालय

श्रीमान् उमा शंकर द्विवेदी

प्राध्यापक शा० शि० प्र० महाविद्यालय जबलपुर की सम्मति

पं० राम विद्याल जी त्रिपाठी ने सरल संस्कृत में राम चरित्र नामक सरल काव्य की रचना की है। उनका यह प्रयास अत्यन्त सराहनीय है। संस्कृत भाषा के प्रति-छात्रों में आकर्षण एवं आस्था उत्पन्न करने की दृष्टि से उनका यह स्तुत्य प्रयास अनुकरणीय है। श्री त्रिपाठी जी ने अपने इस प्रयास के द्वारा ऐसी पृष्ठ भूमि का निर्माण किया है, जिसके आधार पर संस्कृत भाषा के भव्य प्रासाद की ओर श्रद्धालु व्यक्तियों को सरलता से उन्मुख किया जा सकता है।

मैं उनकी सफलता की कामना करता हूँ।

जबलपुर

उमा शंकर द्विवेदी

२५-११-६७

प्राध्यापक शा० शि० प्र० महाविद्यालय जबलपुर

—१०:—

श्रीमान् शिव शंकर मिश्रा

प्राचार्य अ० प्र० नर्मदा उ० माध्यमिक विद्यालय जबलपुर

संस्कृत इतनी सरल हो सकती है और वह भी काव्य रूप में, यह मुझे आज ही त्रिपाठी जी के 'श्री रामचरितम्' का अवलोकन करने पर ज्ञात हुआ। सभी औत्तरीय भाषाओं के ज्ञाता बड़ी सरलता से इस काव्य को पढ़ एवं समझ सकते हैं। इस ग्रन्थ के पठन पाठन से संस्कृत का प्रचार तो होगा ही साथ ही साथ पाठकों को भारतीय संस्कृति का भी ज्ञान प्राप्त होगा। थोड़े समय में रामायण एवं मानस का ज्ञान प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करने वाला यह ग्रन्थ छात्रों के लिये बड़े काम की वस्तु सिद्ध होगी।

जबलपुर दिनांक

शिव शंकर मिश्र

२५-११-६७

प्राचार्य अ० प्र० नर्मदा उच्चतर महाविद्यालय जबलपुर

43m. 9m

राज्य सभा दिल्ली के सदस्य श्रीमान् भवानी प्रसाद तिवारी:—

आदि कवि द्वारा प्रणीत राम कथा ऐसी है, कि उसे लेकर कोई कवि बन जाय सह सम्भाव्य है। सहज संस्कृत में लिखी गई पं० रामविशाल त्रिपाठी का यह 'राम चरितम्' विद्यार्थियों को प्रारम्भिक पाठ पढ़ाने में सहायक है, अंशतः इसे पाठ्य-पुस्तकों में भी स्थान मिलना चाहिये। मैं हृदय से इनकी सफलता चाहता हूँ। कोई संस्कृत प्रेमी उदार मना, धनी, मानी इसे प्रकाशित होने में सहायक हों तो राम कथा प्रकाशन का पुण्य तो बूटेगा ही, संस्कृत भाषा के प्रसार का यत्न भी उसे उपलब्ध होगा

भवानी प्रसाद तिवारी

—:०:—

१६.७.६७

सर्वोदय समाज के प्रसिद्ध नेता, श्रीमान् व्योहार राजेन्द्र सिंह

पं० रामविशाल त्रिपाठी जी ने सरल संस्कृत में संक्षिप्त रूप में 'श्री राम चरितम्' नामक सरस काव्य की रचना की है वैसे तो संस्कृत में अनेक कवियों ने राम चरित की महिमा के साथ अपने नाम को भी ध्वन्य करना चाहा है। महर्षि वाल्मीकि के आदि काव्य के पश्चात् भी लोगों ने राम चरित पर कलम चलाई है, इसे उनका साहस भी कहना चाहिये। यदि संस्कृत के इस अवनति काल में श्री त्रिपाठी जी ने यह साहस किया है, तो उसका स्वागत ही होना चाहिये। जो लोग संस्कृत को कठिन समझ कर छोड़ देते हैं, उनके लिये यह काव्य इस बात का प्रमाण है, कि संस्कृत कितनी सरल हो सकती है। जिसे भारतीय भाषाओं का तनिक भी ज्ञान है, वह उसे सरलता से समझ सकता है।

आप ने संस्कृत में वाल्मीकि और हिन्दी में तुलसीदास जी का आधार लिया है, जो कि अनन्त राम कथा के दोनों छोरों पर स्थित हैं। मूल कथा के अतिरिक्त आपने कुछ नवीन उद्भावनाये भी की हैं, आप का उद्देश्य जो सरलता और संक्षिप्तता है तथा, उसकी पूर्ति अच्छी तरह हुई है।

इसका प्रकाशन शीघ्र ही होना बहुत आवश्यक है, जिससे सब लोग इसका लाभ उठा सकें। विद्यार्थियों को संस्कृत का शीघ्र बोध कराने में यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

जबलपुर १-१०-६७

व्योहार राजेन्द्र सिंह

श्रीमान् द्वारका प्रसाद मिश्र भूतपूर्व मुख्य मंत्री मध्यप्रदेश

आदि कवि वाल्मीकि ने राम चरित की जो गंगा प्रवाहित की वह शाश्वत है। प्रवाह बदलता रहता है, परन्तु त्रिपथगा ज्यों की त्यों और साथ ही नित्य नवीन रहती हैं और आबाल वृद्ध वनिता सभी के लिये सुलभ है। श्री राम विशाल त्रिपाठी का यह प्रयास वालकों के काम का तो है ही साथ ही संस्कृत भाषा सीखने की इच्छा रखने वालों के लिये भी उपयोगी सिद्ध होगा, क्योंकि देव भाषा को अत्यन्त सरल कर दिया गया है।

मैं श्री त्रिपाठी जी के प्रयास को स्तुत्य मानता हूँ और उनकी सफलता की कामना करता हूँ।

जबलपुर ४।११।६७

द्वारका प्रसाद मिश्र

—:०:—

काशी प्रसाद पारखेय अध्यक्ष मध्यप्रदेश विधान सभा

मैंने; श्रीराम विशालजी त्रिपाठी द्वारा रचित 'श्रीराम चरितम्' नामक हस्तलिखित ग्रन्थ का अवलोकन किया। ग्रन्थ में प्रयुक्त संस्कृत, सुबोध एवं सरल है। उत्तर मध्यमिक शालाओं के पाठ्यक्रम में रखने हेतु यह ग्रन्थ बहुत ही उपयुक्त होगा।

काशी प्रसाद पांडे

दिनांक २० जून १९६८

भोपाल

—:०:—

श्रीमान् मणीभाई जे० पटेल संसद सदस्य; लोक सभा दिल्ली

श्रीमान् पंडित राम विशाल जी त्रिपाठी "शास्त्री जी द्वारा लिखित "श्रीराम चरितम्,, को देखा ! पुस्तक में लगभग दो हजार श्लोक अनुष्टुप छंद एवं शिखरिणी छंदों से संकलित की गई है संस्कृत भाषा क्लिष्ट होते भी सरल संस्कृत में पुस्तक की रचना की गई हैं। मेरी राय में छात्रों के लिये उपयोगी उपयोगी सिद्ध होगी।

कल्पनाभवन सागर म० प्र०

मणी भाई जे० पटेल

दिनांक २६-६-६८

(एम० पी०)



पुस्तक मिलने का पता :—

पं० रामविशाल शास्त्री

ग्राम—बड़ी पोड़ी (पोड़ी कलां)

पो०—ढीमर खेड़ा

जि०—जबलपुर (म० प्र०)

मुद्रक :—

नरसिंह राम शुक्ल

सजनी प्रेस,

१८०, सोहवतिया, इलाहाबाद ।